नौजवानों के नाम

शहीदे-आजम भगत सिंह का संदेश

पाँचवाँ पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2017
चतुर्थ पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2016
तृतीय पुनर्मुद्रण : फरवरी, 2012
तृतीय संस्करण : 2001
द्वितीय संस्करण : 2000
प्रथम संस्करण : 1999

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

मुद्रकः
प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स,
ए-21 झिलमिल इण्डस्ट्रियल एरिया,
शाहदरा, दिल्ली-110095

ISBN 81-8777-13-1

मूल्यः 25 रुपये

विषय-सूची

घर को अलविदा : पिता जी के नाम पत्र 1

युवक ! 2

विद्यार्थी और राजनीति 5

अछूत-समस्या 8

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज 13

नौजवान भारत सभा का घोषणपत्र 17

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र 24

असेम्बली हॉल में फेंका गया पर्चा 28

बम का दर्शन 30

अदालत एक ढकोसला है : छह साथियों का एलान 39

पिता जी के नाम पत्र 42

गाँधी जी के नाम खुली चिट्ठी 45

हमें फाँसी देने के बजाय गोली से उड़ा दिया जाये 48

वर्ग-रुचि का आन्दोलनों पर असर 51

घर को अलविदा : पिता जी के नाम पत्र

(सन 1923 में भगतसिंह, नेशनल कॉलेज, लाहौर के विद्यार्थी थे। जन-जागरण के लिए ड्रामा-क्लब में भी भाग लेते थे। क्रान्तिकारी अध्यापकों और साथियों से नाता जुड़ गया था। भारत को आजादी कैसे मिले, इस बारे में लम्बा-चौड़ा अध्ययन और बहसें जारी थीं।

घर में दादी जी ने अपने पोते की शादी की बात चलायी। उनके सामने अपना तर्क न चलते देख पिता जी के नाम यह पत्र लिख छोड़ा और कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी के पास पहुँचकर 'प्रताप' में काम शुरू कर दिया। वहीं बी.के. दत्त, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा-- जैसे क्रान्तिकारी साथियों से मुलाकात हुई। उनका कानपुर पहुँचना क्रान्ति के रास्ते पर एक बड़ा कदम बना। पिता जी के नाम लिखा गया भगतसिंह का यह पत्र घर छोड़ने सम्बन्धी उनके विचारों को सामने लाता है। -- सं.)

पूज्य पिताजी,

नमस्ते।

मेरी जिन्दगी मकसदे आला[1] यानी आज़ादी-ए-हिन्द के असूल[2] के लिए वक्फ[3] हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी खाहशात[4] बायसे कशिश[5] नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन[6] के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतीज्ञा पूरी कर रहा हूँ।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएँगे।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

१. उच्च उद्देश्य, २. सिद्धान्त, ३. दान, ४. सांसारिक इच्छाएँ, ५.आकर्षक, ६. देश-सेवा।

युवक!

('युवक!' शीर्षक से नीचे दिया गया भगतसिंह का यह लेख 'सा. मतवाला' (वर्षः 2, अंक सं. 38, 16 मई, 1925) में बलवन्तसिंह के नाम से छपा था। इस लेख की चर्चा 'मतवाला' के सम्पादकीय कर्म से जुड़े आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी में भी मिलती है। लेख से पूर्व यहाँ 'आलोचना' में प्रकाशित डायरी के उस अंश को भी उद्धृत किया जा रहा है। -- सं.)

सन्ध्या समय सम्मेलन भवन के रंगमंच पर देशभक्त भगतसिंह की स्मृति में सभा हुई।.... भगतसिंह ने 'मतवाला' (कलकत्ता) में एक लेख लिखा था, जिसको सँवार-सुधारकर मैंने छापा था और उसे पुस्तक भण्डार द्वारा प्रकाशित 'युवक-साहित्य' में संगृहीत भी मैंने ही किया था। वह लेख बलवन्तसिंह के नाम से लिखा था। क्रान्तिकारी लेख प्रायः गुमनाम लिखते थे। यह रहस्य किसी को ज्ञात नहीं। वह लेख युवक-विषयक था। वह लाहौर से उन्होंने भेजा था। असली नाम की जगह 'बलवंत सिंह' ही छापने को लिखा था।

(आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी में दर्ज अंश, 23 मार्च, पृष्ठ 28, *आलोचना-67/* वर्ष 32/ अक्टूबर-दिसम्बर, 1983)

युवावस्था मानव-जीवन का वसन्तकाल है। उसे पाकर मनुष्य मतवाला हो जाता है। हज़ारों बोतल का नशा छा जाता है। विधाता की दी हुई सारी शक्तियाँ सहस्र-धारा होकर फूट पड़ती हैं। मदान्ध मातंग की तरह निरंकुश, वर्षाकालीन शोणभद्र की तरह दुर्द्धर्ष, प्रलयकालीन प्रबल प्रभंजन की तरह प्रचण्ड, नवागत वसन्त की प्रथम मल्लिका कलिका की तरह कोमल, ज्वालामुखी की तरह उच्छृंखल और भैरवी-संगीत की तरह मधुर युवावस्था है। उज्ज्वल प्रभात की शोभा, स्निग्ध सन्ध्या की छटा, शरच्चन्द्रिका की माधुरी, ग्रीष्म-मध्याह्न का उत्ताप और भाद्रपदी अमावस्या के अर्द्धरात्र की भीषणता युवावस्था में सन्निहित है। जैसे क्रान्तिकारी की जेब में बमगोला, षड्यन्त्री की असटी में भरा-भराया तमञ्चा, रण-रस-रसिक वीर के हाथ में खड्ग, वैसे ही मनुष्य की देह में युवावस्था। 16 से 25 वर्ष तक हाड़-चाम के सन्दूक में संसार-भर के हाहाकारों को समेटकर विधाता बन्द कर देता है। दस बरस तक यह झांझरी नैया मँझधार तूफान में डगमगाती रहती है। युवावस्था देखने में तो शस्यश्यामला वसुन्धरा से भी सुन्दर है, पर इसके अन्दर भूकम्प की-सी भयंकरता भरी हुई है। इसीलिए युवावस्था में मनुष्य के लिए केवल दो ही मार्ग हैं -- वह चढ़ सकता है उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर, वह गिर सकता है, अध:पात के अँधेरे खन्दक में। चाहे तो त्यागी हो सकता है युवक, चाहे तो विलासी बन सकता है युवक। वह देवता बन सकता है, तो पिशाच भी बन सकता है। वही संसार को त्रस्त कर सकता है, वही

संसार को अभयदान दे सकता है। संसार में युवक का ही साम्राज्य है। युवक के कीर्तिमान से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। युवक ही रणचण्डी के ललाट की रेखा है। युवक स्वदेश की यश-दुन्दुभि का तुमुल निनाद है। युवक ही स्वदेश की विजय-वैजयन्ती का सुदृढ़ दण्ड है। वह महासागर की उत्ताल तरंगों के समान उद्दण्ड है। वह महाभारत के भीष्मपर्व की पहली ललकार के समान विकराल है, प्रथम मिलन के स्फीत चुम्बन की तरह सरस है, रावण के अहंकार की तरह निर्भीक है, प्रह्लाद के सत्याग्रह की तरह दृढ़ और अटल है। अगर किसी विशाल हृदय की आवश्यकता हो, तो युवकों के हृदय टटोलो। अगर किसी आत्मत्यागी वीर की चाह हो, तो युवकों से माँगो। रसिकता उसी के बाँटे पड़ी है। भावुकता पर उसी का सिक्का है। वह छन्दः शास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी प्रतिभाशाली कवि है। कवि भी उसी के हृदयारविन्द का मधुप है। वह रसों की परिभाषा नहीं जानता, पर वह कविता का सच्चा मर्मज्ञ है। सृष्टि की एक विषम समस्या है युवक। ईश्वरीय रचना-कौशल का एक उत्कृष्ट नमूना है युवक। सन्ध्या समय वह नदी के तट पर घण्टों बैठा रहता है। क्षितिज की ओर बढ़ते जानेवाले रक्त-रश्मि सूर्यदेव को आकृष्ट नेत्रों से देखता रह जाता है। उस पार से आती हुई संगीत-लहरी के मन्द प्रवाह में तल्लीन हो जाता है। विचित्र है उसका जीवन। अद्भुत है उसका साहस। अमोघ है उसका उत्साह।

वह निश्चिन्त है, असावधान है। लगन लग गयी, तो रात-भर जागना उसके बायें हाथ का खेल है, जेठ की दुपहरी चैत की चाँदनी है, सावन-भादों की झड़ी मंगलोत्सव की पुष्पवृष्टि है, श्मशान की निस्तब्धता, उद्यान का विहंग-कल-कूजन है। वह इच्छा करे तो समाज और जाति को उद्बुद्ध कर दे, देश की लाली रख ले, राष्ट्र का मुखोज्ज्वल कर दे, बड़े-बड़े साम्राज्य उलट डाले। पतितों के उत्थान और संसार के उद्धारक सूत्र उसी के हाथ में हैं। वह इस विशाल विश्वरंगस्थल का सिद्धहस्त खिलाड़ी है।

अगर रक्त की भेंट चाहिए, तो सिवा युवक के कौन देगा? अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की ओर देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति के भाग्य विधाता युवक ही तो होते हैं। एक पाश्चात्य पंडित ने ठीक कहा है -- It is an established truism that youngmen of today are the countrymen of tomorrow, holding in their hands the high destinies of the Land. They are the seeds that spring and bear fruit. भावार्थ यह कि आज के युवक ही कल के देश के भाग्य-निर्माता हैं। वे ही भविष्य की सफलता के बीज हैं।

संसार के इतिहासों के पन्ने खोलकर देख लो, युवक के रक्त से लिखे हुए अमर सन्देश भरे पड़े हैं। संसार की क्रान्तियों और परिवर्तनों के वर्णन छाँट डालो, उनमें केवल ऐसे युवक ही मिलेंगे, जिन्हें बुद्धिमानों ने 'पागल छोकड़े' अथवा

'पथ-भ्रष्ट' कहा है। पर जो सिड़ी हैं, वे क्या ख़ाक समझेंगे कि स्वदेशाभिमान से उन्मत्त होकर अपनी लोथों से किले की खाइयों को पाट देनेवाले जापानी युवक किस फौलाद के टुकड़े थे। सच्चा युवक तो बिना झिझक के मृत्यु का आलिंगन करता है, चोखी संगीनों के सामने छाती खोलकर डट जाता है, तोप के मुँह पर बैठकर भी मुस्कुराता ही रहता है, बेड़ियों की झनकार पर राष्ट्रीय गान गाता है और फाँसी के तख्ते पर अट्टहास पूर्वक आरूढ़ हो जाता है। फाँसी के दिन युवक का ही वज़न बढ़ता है, जेल की चक्की पर युवक ही उद्बोधन-मन्त्र गाता है, कालकोठरी के अन्धकार में धँसकर ही वह स्वदेश को अन्धकार के बीच से उबारता है। अमेरिका के युवक-दल के नेता 'पैट्रिक हेनरी' ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता में एक बार कहा था--" Life is dearer outside the prisonwalls, but it is immeasurably dearer within the prison-cells, where it is the price paid for the freedom's fight." अर्थात् जेल की दीवारों से बाहर की ज़िन्दगी बड़ी महँगी है, पर जेल की काल-कोठरियों की ज़िन्दगी और भी महँगी है; क्योंकि वहाँ यह स्वतन्त्रता-संग्राम के मूल्य-रूप में चुकायी जाती है।

जब ऐसा सजीव नेता है, तभी तो अमेरिका के युवकों में यह ज्वलन्त घोषणा करने का साहस भी है कि, " We believe that when a Government becomes a destructive of the natural right of man, it is the man's duty to destroy that Government." अर्थात् अमेरिका के युवक विश्वास करते हैं कि जन्मसिद्ध अधिकारों को पद-दलित करनेवाली सत्ता का विनाश करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

ऐ भारतीय युवक! तू क्यों गफलत की नींद में पड़ा बेखबर सो रहा है! उठ, आँखें खोल, देख, प्राची-दिशा का ललाट सिन्दूर-रञ्जित हो उठा। अब अधिक मत सो। सोना हो तो अनन्त निद्रा की गोद में जाकर सो रह । कापुरुषता के क्रोड़ में क्यों सोता है? माया-मोह-ममता त्यागकर गरज उठ --

"Farewell Farewell My true Love
The army is on move;
And if I stayed with you Love,
A coward I shall prove."

तेरी माता, तेरी प्रातः स्मरणीया, तेरी परम वन्दनीया, तेरी जगदम्बा, तेरी अन्नपूर्णा, तेरी त्रिशूलधारिणी, तेरी सिंहवाहिनी, तेरी शस्यश्यामलाञ्चला आज फूट-फूटकर रो रही है। क्या उसकी विकलता तुझे तनिक भी चंचल नहीं करती? धिक्कार है तेरी निर्जीवता पर ! तेरे पितर भी नतमस्तक हैं इस नपुंसत्व पर ! यदि अब भी तेरे किसी अंग में टुक हया बाकी हो, तो उठकर माता के दूध की लाज रख, उसके उद्धार का बीड़ा उठा, उसके आँसुओं की एक-एक बूँद की सौगन्ध ले, उसका बेड़ा पार कर और बोल मुक्त कण्ठ से बन्देमातरम्।

विद्यार्थी और राजनीति

(इस महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मसले पर यह लेख जुलाई, 1928 में 'किरती' में छपा था। उन दिनों अनेक नेता विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा न लेने की सलाहें देते थे, जिनके जवाब में यह लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह लेख सम्पादकीय विचारों में छपा था, और सम्भवतः भगत सिंह का लिखा हुआ है। -- सं.)

इस बात का बड़ा भारी शोर सुना जा रहा है कि पढ़नेवाले नौजवान (विद्यार्थी) राजनीतिक या पोलिटिकल कामों में हिस्सा न लें। पंजाब सरकार की राय बिल्कुल ही न्यारी है। विद्यार्थियों से कालेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हस्ताक्षर करवाये जाते हैं कि वे पोलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे। आगे हमारा दुर्भाग्य कि लोगों की ओर से चुना हुआ मनोहर, जो अब शिक्षा-मन्त्री है, स्कूलों-कालेजों के नाम एक सर्कुलर या परिपत्र भेजता है कि कोई पढ़ने या पढ़ानेवाला पोलिटिक्स में हिस्सा न ले। कुछ दिन हुए जब लाहौर में स्टूडेंट्स यूनियन या विद्यार्थी सभा की ओर से विद्यार्थी-सप्ताह मनाया जा रहा था। वहाँ भी सर अब्दुल कादर और प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र नन्दा ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को पालिटिक्स में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

पंजाब को राजनीतिक जीवन में सबसे पिछड़ा हुआ (Politically backward) कहा जाता है। इसका क्या कारण है? क्या पंजाब ने बलिदान कम किये हैं? क्या पंजाब ने मुसीबतें कम झेली हैं? फिर क्या कारण है कि हम इस मैदान में सबसे पीछे हैं? इसका कारण स्पष्ट है कि हमारे शिक्षा विभाग के अधिकारी लोग बिल्कुल ही बुद्धू हैं। आज पंजाब कौंसिल की कार्रवाई पढ़कर इस बात का अच्छी तरह पता चलता है कि इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा निकम्मी होती है और फिजूल होती है। और विद्यार्थी-युवा-जगत अपने देश की बातों में कोई हिस्सा नहीं लेता। उन्हें इस सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं होता। जब वे पढ़कर निकलते हैं तब उनमें से कुछ ही आगे पढ़ते हैं, लेकिन वे ऐसी कच्ची-कच्ची बातें करते हैं कि सुनकर स्वयं ही अफसोस कर बैठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता। जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज ही अक्ल के अन्धे बनाने की कोशिश की जा रही है। इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें खुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए। लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना

उस शिक्षा में शामिल नहीं? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं, जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए ही हासिल की जाये। ऐसी शिक्षा की जरूरत ही क्या है? कुछ ज्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं -- ''काका, तुम पालिटिक्स के अनुसार पढ़ो और सोचो जरूर, लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिए फायदेमन्द साबित होगे।''

बात बड़ी सुन्दर लगती है, लेकिन हम इसे भी रद्द करते हैं, क्योंकि यह भी सिर्फ ऊपरी बात है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दिन विद्यार्थी एक पुस्तक 'Appeal to the young', Prince Kropotkin ('नौजवानों के नाम अपील', प्रिंस क्रोपोटकिन) पढ़ रहा था। एक प्रोफेसर साहब कहने लगे, यह कौन-सी पुस्तक है? और यह तो किसी बंगाली का नाम जान पड़ता है! लड़का बोल पड़ा-- प्रिंस क्रोपोटकिन का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। वे अर्थशास्त्र के विद्वान थे। इस नाम से परिचित होना प्रत्येक प्रोफेसर के लिए बड़ा जरूरी था। प्रोफेसर की 'योग्यता' पर लड़का हँस भी पड़ा। और उसने फिर कहा -- ये रूसी सज्जन थे। बस! 'रूसी!' कहर टूट पड़ा! प्रोफेसर ने कहा कि ''तुम बोल्शेविक हो, क्योंकि तुम पोलिटिकल पुस्तकें पढ़ते हो।''

देखिए आप प्रोफेसर की योग्यता! अब उन बेचारे विद्यार्थियों को उनसे क्या सीखना है? ऐसी स्थिति में वे नौजवान क्या सीख सकते हैं?

दूसरी बात यह है कि व्यावहारिक राजनीति क्या होती है? महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत करना और भाषण सुनना तो हुई व्यावहारिक राजनीति, पर कमिशन या वाइसराय का स्वागत करना क्या हुआ? क्या वह पालिटिक्स का दूसरा पहलू नहीं? सरकारों और देशों के प्रबंध से सम्बन्धित कोई भी बात पालिटिक्स के मैदान में ही गिनी जायेगी, तो फिर यह भी पालिटिक्स हुई कि नहीं? कहा जायेगा कि इससे सरकार खुश होती है और दूसरी से नाराज? फिर सवाल तो सरकार की खुशी या नाराजगी का हुआ। क्या विद्यार्थियों को जन्मते ही खुशामद का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए? हम तो समझते हैं कि जब तक हिन्दुस्तान में विदेशी डाकू शासन कर रहे हैं तब तक वफादारी करनेवाले वफादार नहीं, बल्कि गद्दार हैं, इनसान नहीं, पशु हैं, पेट के गुलाम हैं। तो हम किस तरह कहें कि विद्यार्थी वफादारी का पाठ पढ़ें।

सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश-सेवकों की जरूरत है, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या बुड्ढों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? यह तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं

यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो। सिर्फ गणित और ज्योग्राफी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो।

क्या इंग्लैण्ड के सभी विद्यार्थियों का कालेज छोड़कर जर्मनी के खिलाफ लड़ने के लिए निकल पड़ना पालिटिक्स नहीं थी? तब हमारे उपदेशक कहाँ थे जो उनसे कहते -- जाओ, जाकर शिक्षा हासिल करो। आज नेशनल कालेज, अहमदाबाद के जो लड़के सत्याग्रह के बारदोली वालों की सहायता कर रहे हैं, क्या वे ऐसे ही मूर्ख रह जायेंगे? देखते हैं उनकी तुलना में पंजाब का विश्वविद्यालय कितने योग्य आदमी पैदा करता है? सभी देशों को आजाद करवानेवाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं। क्या हिन्दुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पायेंगे? नौजवानों को 1919 में विद्यार्थियों पर किये गये अत्याचार भूल नहीं सकते। वे यह भी समझते हैं कि उन्हें एक भारी क्रान्ति की जरूरत है। वे पढ़ें। जरूर पढ़ें । साथ ही पालिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपने जीवन इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें। वरन बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता ।

भारतीय श्रमिकों को -- भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं -- आगे आना है।
हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते।

-- भगत सिंह द्वारा फाँसी पर चढ़ाये जाने के कुछ सप्ताह पहले जेल से 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' लिखे गये पत्र से।

अछूत-समस्या

(काकीनाडा में 1923 में कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आजकल की अनुसूचित जातियों को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिन्दू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। हिन्दू और मुस्लिम अमीर लोग इस वर्ग-भेद को पक्का करने के लिए धान देने को तैयार थे।

इस प्रकार अछूतों के यह 'दोस्त' उन्हें धार्म के नाम पर बाँटने की कोशिशें करते थे। उसी समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगत सिंह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिंह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में 'विद्रोही' नाम से प्रकाशित हुआ था। -- सं.)

हमारे देश-जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम् सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्यावाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जायेगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज हो उठेंगे! कुएँ से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जायेगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किये जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं। जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलानेवाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर क्रान्ति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होते तथा इस जोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जायेगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रेजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन श्री नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में खूब कहा -- "If the Hindu Society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public schools, and if.... the president of local board representing so many lakhs of people in this houses refuses to allow his fellows and brothers the

elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureaucracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people.... How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights of human beings."

वे कहते हैं कि जब तुम एक इनसान को पीने के लिए पानी देने से भी इनकार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो? जब तुम एक इनसान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते हो तो तुम अधिक राजनीतिक अधिकार माँगने के कैसे अधिकारी बन गये?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिन्दू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने में शामिल करना चाहते हैं!

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जायेंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इनसानों-जैसा व्यवहार किया जायेगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दू कौम को नुकसान पहुँचा रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुनकर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिन्दुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ-न-कुछ इस मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगान्तकारी' कहे जानेवाले भी शामिल हुए। पटना में हिन्दू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय -- जो कि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं -- की अध्यक्षता में हुआ, तो जोरदार बहस छिड़ी। अच्छी नोंक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक है अथवा नहीं? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लालाजी ने सबको सहमत कर दिया तथा यह दो बातें स्वीकृत कर हिन्दू धर्म की लाज रख ली। वरना ज़रा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में नि:संग फिरता है, लेकिन एक इनसान का हमसे स्पर्श हो जाये तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस समय मालवीय जी-जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं! क्या खूब यह चाल है। सबको प्यार करनेवाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है। भगवान रुष्ट हो जाता है! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पायी जाती है। जो निम्नतम काम

करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं उन्हें ही हम दुरदुराते हैं। पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इनसान को पास नहीं बिठा सकते!

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति-कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ जरूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी कौम की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सभी को हुई। मुस्लिमों ने ज़रा ज्यादा जोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिये। इससे हिन्दुओं के अहम् को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फसाद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों ने भी सोचा कि हम पीछे न रह जायें। उन्होंने भी अमृत छकाना आरम्भ कर दिया। हिन्दू-सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों कौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं। इसका बहुत शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश के दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी खुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जायें? इस विचार के अमल में अंग्रेजी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफी हाथ था। 'आदि धर्म मण्डल' जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जवाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इनसान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन-भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कहकर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुजारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गये। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों

के प्रति घृणा पैदा हो गयी। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुननेवाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू. पी. की तरफ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा नौजवान कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है, वह काफी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने-जैसा इनसान समझना, बिना अमृत छकाये, बिना कलमा पढ़ाये या शुद्धि किये उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना, यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मजदूर-प्रचार शुरू हुआ उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझाकर भड़काते थे कि देखो, यह भंगी-चमारों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बन्द करावायेंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गये। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन गरीबों को नीच और कमीन कहकर अपनी जूती के नीचे दबाये रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वह साफ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ है -- वे गरीब हैं। गरीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के गरीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत कौमें अपने आपको संगठित न कर लें। हम तो समझते हैं कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत हैं। या तो साम्प्रदायिक भेद का झंझट ही खत्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्त्तव्य है कि वे स्कूल-कालेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलायें। जबानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ायें। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलायें। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव में बाल-विवाह के विरुद्ध पेश किये बिल तथा मज़हब के बहाने हाय-तौबा मचायी जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलानेवाले असली जन-सेवको तथा भाइयो उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर

सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियाँ स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिन्दगी सम्भव बनाकर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलियेनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं -- उठो, अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिशें किये बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहनेवालों को यत्न करना चाहिए। इनसान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गयी हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाये रखना चाहते हैं। कहावत है, 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इनकार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में तुम मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो.... संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जायेंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होनेवाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरो! उठो, और बगावत खड़ी कर दो।

...अलग-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव हर हालत में मिटाना जरूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा।

--*'किरती'* पत्रिका के मई, 1928 अंक में प्रकाशित लेख से।

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

(1919 के जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरू किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम नेताओं में सुलहनामा लिखाकर दंगों को रोकने के यत्न किये।

इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के 'किरती' में छपा। यह लेख इस समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों का सार है। -- सं.)

भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म के होना ही दूसरे धर्म के कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिन्दू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नज़र आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नज़रों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सबके सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रोब को कायम रखने के लिए डण्डे-लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी बचे कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने पर आ जाता है।

जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों

का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज-स्वराज' के दमगज़े मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठनेवालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो साम्प्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, वैसे तो जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं, और साम्प्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, वे अखबारवाले हैं।

पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शान्त रहा हो, बहुत कम हैं।

अखबारों का असली कर्त्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतन्त्रता की झलक सामने दिखायी देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। वही नौकरशाही -- जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी -- आज अपनी जड़ें इतनी मजबूत कर चुकी है कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन साम्प्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं व पत्रकारों ने ढेरों कुर्बानियाँ दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया, जिससे आजकल के बहुत-से साम्प्रदायिक

नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धातों में से यह एक मुख्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के कारण ही तबलीग, तनकीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है, क्योंकि भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता।

लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और यही लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिए और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की साँस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं, वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इनसान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी, इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है, इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग चेतना का

यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं और उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नज़र से -- हिन्दू, मुसलमान या सिख-रूप में नहीं, वरन सभी को पहले इनसान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है और भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए, बल्कि तैयार-बर-तैयार हो यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, ताकि दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए गदर पार्टी-जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं, जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमें बचा लेंगे।

जिस दिन ऐसी मानसिकता वाले बहुत से लोग हो जायेंगे जो मानव-सेवा और पीड़ित मानवता की मुक्ति को हर चीज से ऊपर समझ कर उसके लिए अपने आप को अर्पित करेंगे, उसी दिन आजादी का युग शुरू होगा। जब वे राजा बनने के लिए नहीं, इहलोक में, अगले जन्म या मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में जाकर कोई अन्य पुरस्कार पाने के लिए नहीं बल्कि मानवता की गरदन पर रखा दासता का जुआ उतार फेंकने के लिए और स्वतन्त्रता एवं शान्ति की स्थापना के लिए दमनकारियों, शोषकों और अत्याचारियों को चुनौती देने की प्रेरणा ग्रहण करेंगे, तभी वे इस मार्ग पर चल सकेंगे जो व्यक्तिगत रूप से उनके लिए भले ही खतरनाक हो लेकिन उनकी महान आत्माओं के लिए एकमात्र गौरवपूर्ण मार्ग है।

--भगत सिंह द्वारा 5-6 अक्तूबर, 1930 को जेल में लिखे हुए उस लेख से जो पहली बार 27 सितम्बर, 1931 को अंग्रेजी पत्रिका 'द पीपुल' में छपा।

नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र

(शहीद भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा ने नौजवानों और विद्यार्थियों को संगठित करने के प्रयास सन् 1926 से ही शुरू कर दिये थे। 11, 12, 13 अप्रैल, 1928 को अमृतसर में नौजवान भारत सभा के सम्मेलन के लिए सभा का घोषणापत्र तैयार किया गया, जिसे नीचे दिया गया है। भगत सिंह इस सभा के महासचिव और भगवतीचरण वोहरा प्रचार-सचिव बने। -सं.)

नौजवान साथियो,

हमारा देश एक अव्यवस्था की स्थिति से गुज़र रहा है। चारों तरफ एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और हताशा का साम्राज्य है। देश के बड़े नेताओं ने अपने आदर्श के प्रति आस्था खो दी है और उनमें से अधिकांश को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं है। भारत की आजादी के पैरोकारों के पास कोई कार्यक्रम नहीं है, और उनमें उत्साह का अभाव है। चारों तरफ अराजकता है। लेकिन किसी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में अराजकता एक अनिवार्य तथा आवश्यक दौर है। ऐसी ही नाजुक घड़ियों में कार्यकर्ताओं की ईमानदारी की परख होती है, उनके चरित्र का निर्माण होता है, वास्तविक कार्यक्रम बनता है, और तब नये उत्साह, नयी आशाएँ, नये विश्वास और नये जोशो-खरोश के साथ काम आरम्भ होता है। इसलिए उसमें मन ओछा करने की कोई बात नहीं है।

हम अपने-आपको एक नये युग के द्वार पर खड़ा पाकर बड़े भाग्यशाली हैं। अंग्रेज नौकरशाही के बड़े पैमाने पर गुणगान करनेवाले गीत अब सुनायी नहीं देते। अंग्रेज का हमसे यह ऐतिहासिक प्रश्न है कि ''तुम तलवार से प्रशासित होगे या कलम से?'' अब ऐसा नहीं रहा कि उसका उत्तर न दिया जाता हो। लार्ड बर्केनहेड के शब्दों में, ''हमने भारत को तलवार के सहारे जीता और तलवार के बल से ही हम उसे अपने हाथ में रखेंगे।'' इस खरेपन ने अब सबकुछ साफ कर दिया है। जलियाँवाला और मानावाला के अत्याचारों को याद करने के बाद यह उद्धृत करना कि ''अच्छी सरकार स्वशासन का स्थान नहीं ले सकती'', बेहूदगी ही कही जायेगी। यह बात तो स्वत: स्पष्ट है।

भारत में अंग्रेजी हुकूमत की दी हुई सुख-सम्पदाओं के बारे में भी दो शब्द लीजिए। भारत के उद्योग-धन्धों के पतन और विनाश के बारे में बतौर गवाही क्या रमेशचन्द्र दत्त, विलियम डिगवी और दादा भाई नौरोजी के सारे ग्रन्थों को उद्धृत

करने की आवश्यकता होगी? क्या इस बात को साबित करने के लिए कोई प्रमाण जुटाना पड़ेगा कि अपनी उपजाऊ भूमि तथा खानों के बावजूद आज भारत सबसे गरीब देशों में से एक है, कि भारत जो अपनी महान सभ्यता पर गर्व कर सकता था आज बहुत पिछड़ा हुआ देश है, जहाँ साक्षरता का अनुपात केवल पाँच प्रतिशत है? क्या लोग यह नहीं जानते कि भारत में सबसे अधिक लोग मरते हैं और यहाँ बच्चों की मौत का अनुपात दुनिया में सबसे ऊँचा है? प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा तथा इसी प्रकार की अन्य महामारियाँ आये दिन की व्याधियाँ बनती जा रही हैं? क्या बार-बार यह सुनना कि हम स्वशासन के योग्य नहीं हैं, एक अपमानजनक बात नहीं है? क्या यह तौहीन की बात नहीं है कि गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी और हरीसिंह जैसे शूरवीरों के बाद भी हमसे कहा जाय कि हममें अपनी रक्षा करने की क्षमता नहीं है? खेद है कि हमने अपने वाणिज्य और व्यवसाय को उसकी शैशवावस्था में ही कुचला जाते नहीं देखा? जब बाबा गुरुदत्त सिंह ने 1914 में गुरु नानक स्टीमशिप चालू करने का पहला प्रयास किया था तो दूर देश कनाडा में और भारत आते समय उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया और अन्त में बज-बज के बन्दरगाह पर उन साहसी मुसाफिरों का गोलियों से खूनी स्वागत किया गया। और भी क्या कुछ नहीं किया गया? क्या हमने यह सब नहीं देखा? उस भारत में जहाँ एक द्रोपदी के सम्मान की रक्षा में महाभारत-जैसा महायुद्ध लड़ा गया था, वहाँ 1919 में दर्जनों द्रोपदियों को बेइज्जत किया गया, उनके नंगे चेहरों पर थूका गया। क्या हमने यह सब नहीं देखा? फिर भी हम मौजूदा व्यवस्था से सन्तुष्ट हैं। क्या यह जीने योग्य ज़िन्दगी है?

क्या हमें यह महसूस कराने के लिए कि हम गुलाम हैं और हमें आजाद होना चाहिए, किसी दैवी ज्ञान या आकाशवाणी की आवश्यकता है? क्या हम अवसर की प्रतीक्षा करेंगे या किसी अज्ञात की प्रतीक्षा करेंगे कि हमें महसूस कराये कि हम दलित लोग हैं? क्या हम इन्तजार में बैठे रहेंगे कि कोई दैवी सहायता आ जाय या फिर कोई जादू हो जाय कि हम आजाद हो जायें? क्या हम आजादी के बुनियादी सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं? ''जिन्हें आज़ाद होना है उन्हें स्वयं चोट करनी पड़ेगी।'' नौजवानो जागो, उठो, हम काफी देर सो चुके।

हमने केवल नौजवानों से ही अपील की है क्योंकि नौजवान बहादुर होते हैं, उदार एवं भावुक होते हैं, क्योंकि नौजवान भीषण अमानवीय यन्त्रणाओं को मुस्कुराते हुए बर्दाश्त कर लेते हैं और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के मौत का सामना करते हैं, क्योंकि मानव-प्रगति का सम्पूर्ण इतिहास नौजवान आदमियों तथा औरतों के खून से लिखा है; क्योंकि सुधार हमेशा नौजवानों की शक्ति, साहस, आत्मबलिदान और भावात्मक विश्वास के बल पर ही प्राप्त हुए हैं -- ऐसे नौजवान जो भय से परिचित नहीं हैं और जो सोचने के बजाय अनुभव कहीं अधिक करते हैं।

क्या यह जापान के नौजवान नहीं थे जिन्होंने पोर्ट आर्थर तक पहुँचने के लिए सूखा रास्ता बनाने के उद्देश्य से अपने आपको सैकड़ों की तादाद में खाइयों में झोंक दिया था? और जापान आज विश्व के सबसे आगे बढ़े हुए देशों में से एक है। क्या यह पोलैण्ड के नौजवान नहीं थे जिन्होंने पिछली पूरी शताब्दी-भर बार-बार संघर्ष किये, पराजित हुए और फिर बहादुरी के साथ लड़े? और आज एक आजाद पोलैण्ड हमारे सामने है। इटली को आस्ट्रिया के जुए से किसने आज़ाद किया था? तरुण इटली ने!

तरुण तुर्कों ने जो कमाल दिखलाया, क्या आप उसे जानते हैं? चीन के नौजवान जो कर रहे हैं, उसे क्या आप रोज समाचार-पत्रों में नहीं पढ़ते हैं? क्या यह रूस के नौजवान नहीं थे जिन्होंने रूसियों के उद्धार के लिए अपनी जानें क़ुर्बान कर दी थीं? पिछली शताब्दी-भर लगातार केवल समाजवादी पर्चे बाँटने के अपराध में सैकड़ों-हजारों की संख्या में उन्हें साइबेरिया में जलावतन किया गया था, दोस्तोवस्की-जैसे लोगों को सिर्फ इसलिए जेलों में बन्द किया गया कि वे समाजवादी डिबेटिंग (बहस-मुबाहसा चलानेवाली) सोसाइटी के सदस्य थे। बार-बार उन्होंने दमन के तूफान का सामना किया, लेकिन उन्होंने साहस नहीं खोया। यह संघर्षरत नौजवान थे। और सब जगह नौजवान ही निडर होकर बगैर किसी हिचकिचाहट के और बगैर (लम्बी-चौड़ी) उम्मीदें बाँधे लड़ सकते हैं। और आज हम महान रूस में विश्व के मुक्तिदाता के दर्शन कर सकते हैं।

जबकि हम भारतवासी, हम क्या रहे हैं? पीपल की एक डाल टूटते ही हिन्दुओं की धार्मिक भावनाएँ चोटिल हो उठती हैं! बुतों को तोड़नेवाले मुसलमानों के ताज़िये नामक कागज़ के बुत का कोना फटते ही अल्लाह का प्रकोप जाग उठता है और फिर वह 'नापाक' हिन्दुओं के खून से कम किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता! मनुष्य को पशुओं से अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए, लेकिन यहाँ भारत में वे लोग पवित्र पशु के नाम पर एक-दूसरे का सर फोड़ते हैं।

हमारे बीच और भी बहुत-से लोग हैं जो अपने आलसीपन को अन्तरराष्ट्रीयतावाद की निरर्थक बकवास के पीछे छिपाते हैं। जब उनसे अपने देश की सेवा करने को कहा जाता है तो वे कहते हैं, ''श्रीमान्‌जी, हम लोग जगत-बन्धु हैं और सार्वभौमिक भाईचारे में विश्वास करते हैं। हमें अंग्रेजों से नहीं झगड़ना चाहिए। वे हमारे भाई हैं।'' क्या खूब विचार है, क्या खूबसूरत शब्दावली है! लेकिन वे इसके उलझाव को नहीं पकड़ पाते। सार्वभौमिक भाईचारे के सिद्धान्त की माँग है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का शोषण असम्भव बना दिया जाये, सबको बगैर किसी भेद-भाव के समान अवसर प्रदान किये जायें। भारत में ब्रिटिश शासन इन सब बातों का ठीक उल्टा है और हम उससे किसी प्रकार का सरोकार नहीं रखेंगे।

अब दो शब्द समाज-सेवा के बारे में। बहुत-से नेक मनुष्य सोचते हैं कि समाज-सेवा (उन संकुचित अर्थों में जिनमें हमारे देश में इस शब्द को

प्रयोग किया जाता है और समझा जाता है) हमारी सभी बीमारियों का इलाज है और देशसेवा का सबसे अच्छा तरीका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुत-से ईमानदार नौजवान सारी जिन्दगी गरीबों में अनाज बाँटकर या बीमारों की सेवा करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह अच्छे और आत्मत्यागी लोग हैं लेकिन वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि भारत में भूख और बीमारी की समस्या को खैरात के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता।

धार्मिक अन्ध-विश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। ''जो चीज आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।'' इसी प्रकार की और भी बहुत-सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओं का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साहवाले नौजवानों की आवश्यकता है।

हमने कुछ भी हासिल नहीं किया और हम किसी भी उपलब्धि के लिए कुछ भी त्याग करने को तैयार नहीं हैं। सम्भावित उपलब्धि में किस सम्प्रदाय का क्या हिस्सा होगा, यह तै करने में हमारे नेता आपस में झगड़ रहे हैं। महज अपनी बुज़दिली को और आत्मत्याग की भावना के अभाव को छिपाने के लिए वे असली समस्या पर पर्दा डालकर नकली समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। ये आरामतलब राजनीतिज्ञ हड्डियों के उन मुट्ठी-भर टुकड़ों पर आँखें गड़ाये बैठे हैं जिन्हें, जैसा उनका विश्वास है, सशक्त शासकगण उनके सामने फेंक सकते हैं। यह बहुत ही अपमानजनक बात है। जो लोग आजादी की लड़ाई में बढ़कर आते हैं वे बैठकर यह तै नहीं कर सकते कि इतने त्याग के बाद उनकी कामयाबी होगी और उसमें उनका इतना हिस्सा सुनिश्चित रहना चाहिए। इस प्रकार के लोग कभी भी किसी प्रकार का त्याग नहीं करते। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो बगैर उम्मीदों के, निर्भय होकर और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के लड़ने को तैयार हों और बगैर सम्मान के, बगैर आँसू बहाने वालों के और बगैर प्रशस्तिगान के मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हों। इस प्रकार के उत्साह के अभाव में हम दो मोर्चोंवाले उस महान युद्ध को, जिसे हमें लड़ना है, नहीं लड़ सकेंगे -- दो मोर्चोंवाला, क्योंकि हमें एक तरफ अन्दरूनी शत्रु से लड़ना है और दूसरी तरफ बाहरी दुश्मन से। हमारी असली लड़ाई स्वयं अपनी अयोग्यताओं के खिलाफ है। हमारा शत्रु और कुछ हमारे अपने लोग निजी स्वार्थ के लिए उनका फायदा उठाते हैं।

नौजवान पंजाबियो, दूसरे प्रान्तों के युवक अपने क्षेत्रों में जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। नौजवान बंगालियों ने फरवरी 3 को जिस जागृति तथा संगठन-क्षमता का

परिचय दिया उससे हमें सबक लेना चाहिए। अपनी तमाम कुर्बानियों के बावजूद हमारे पंजाब को राजनीतिक तौर पर पिछड़ा हुआ प्रान्त कहा जाता है। क्यों? क्योंकि सैनिक उपजाति होने के बावजूद हम संगठित एवं अनुशासित नहीं हैं। हमें तक्षशिला विश्वविद्यालय पर गर्व है, लेकिन आज हमारे पास संस्कृति का अभाव है और संस्कृति के लिए उच्चकोटि का साहित्य चाहिए, जिसकी संरचना सुविकसित भाषा के अभाव में नहीं हो सकती। दुख की बात है कि आज हमारे पास उनमें से कुछ भी नहीं है।

देश के सामने उपस्थित उपरोक्त प्रश्नों का समाधान तलाश करने के साथ-साथ हमें अपनी जनता को आनेवाले महान संघर्ष के लिए भी तैयार करना पड़ेगा। हमारी राजनीतिक लड़ाई 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के ठीक बाद से ही आरम्भ हो गयी थी। वह कई दौरों से होकर गुजर चुकी है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अंग्रेज नौकरशाही ने भारत के प्रति एक नयी नीति अपनायी है। वे हमारे देश के पूँजीपति तथा निम्नपूँजीपति वर्ग को सहूलियतें देकर उन्हें अपनी तरफ मिला रहे हैं। दोनों का हित एक हो रहा है। भारत में ब्रिटिश पूँजी के अधिकाधिक प्रवेश का अनिवार्यत: यही परिणाम होगा। निकट भविष्य में बहुत शीघ्र हम उस वर्ग को तथा उसके नेताओं को विदेशी शासकों के साथ जाते देखेंगे। कोई गोलमेज कान्फ्रेंस या इसी प्रकार की और कोई संस्था द्वारा दोनों के बीच समझौता हो जायेगा। तब उनमें शेर और लोमड़ी के बच्चे का रिश्ता नहीं रह जायेगा। समस्त भारतीय जनता के आनेवाले महान संघर्ष के भय से आजादी के इन तथाकथित पैरोकारों की कतारों की दूरी बगैर किसी समझौते के भी कम हो जायेगी।

देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा -- ''क्रान्ति जनता द्वारा, जनता के हित में।'' दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज। स्वराज जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं, बल्कि जनता के लिए भी। यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत-से सुझाव दिये हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उस पर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। विस्तार में गये बगैर हम यह दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गाँवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आनेवाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म -- एक नयी राजसत्ता। यह एक दिन या एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे। क्रान्तिकारी से लामुहाला एक बम और पिस्तौल वाले आदमी से अभिप्राय नहीं है।

युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन

बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे आना चाहिए। उनके सामने जो कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि ''सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।'' उनके जीवन अनवरत असफलताओं के जीवन हो सकते हैं -- गुरु गाविन्दसिंह को आजीवन जिन नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, हो सकता है उससे भी अधिक नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़े । फिर भी उन्हें यह कहकर कि अरे, यह सब तो भ्रम था, पश्चाताप नहीं करना होगा।

नौजवान दोस्तो, इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा करो। सफलता आपकी है। धनहीन, निस्सहाय एवं साधनहीन अवस्था में भाग्य आजमाने के लिए अपने पुत्र को घर से बाहर भेजते समय जेम्स गैरीबाल्डी की महान जननी ने उससे जो शब्द कहे थे [उन्हें] याद रखो। उसने कहा, ''दस में से नौ बार एक नौजवान के साथ जो सबसे अच्छी घटना हो सकती है वह यह है कि उसे जहाज की छत पर से समुद्र में फेंक दिया जाये ताकि वह तैरकर या डूबकर स्वयं अपना रास्ता तै करे।'' प्रणाम है उस माँ को जिसने ये शब्द कहे और प्रणाम है उन लोगों को जो इन शब्दों पर अमल करेंगे।

इटैलियन पुनरुत्थान के प्रसिद्ध विद्वान मैजिनी ने एक बार कहा था, ''सभी महान राष्ट्रीय आन्दोलनों का शुभारम्भ जनता के अविख्यात या अजाने, गैर प्रभावशाली व्यक्तियों से होता है, जिनके पास समय और बाधाओं की परवाह न करनेवाला विश्वास तथा इच्छा-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता।'' जीवन की नौका को लंगर उठाने दो। उसे सागर की लहरों पर तैरने दो और फिर --

लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है।
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो
जहाँ ज्वार हर समय ताजा रहता है --
और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं --
वहाँ अनायास, ऐ नौजवान कोलम्बस --
सत्य का तुम्हारा नया विश्व हो सकता है।

मत हिचको, अवतार के सिद्धान्त को लेकर अपना दिमाग परेशान मत करो और उसे अपने आपको हतोत्साहित मत करने दो। हर व्यक्ति महान हो सकता है,

बशर्ते कि वह प्रयास करे। अपने शहीदों को मत भूलो। करतारसिंह एक नौजवान था, फिर भी बीस वर्ष से कम की आयु में ही देश की सेवा के लिए आगे बढ़कर मुस्कराते हुए बन्देमातरम के नारे के साथ वह फाँसी के तख्ते पर गया। भाई बालमुकुन्द और अवधबिहारी दोनों ने ही जब ध्येय के लिए जीवन दिया तो वे नौजवान थे। वे तुम्हारे में से ही थे। तुम्हें भी वैसा ही ईमानदार देशभक्त और वैसा ही दिल से आजादी को प्यार करनेवाला बनने का प्रयास करना चाहिए, जैसे कि वे लोग थे। सब्र और होशो-हवास मत खोओ, साहस और आशा मत छोड़ो। स्थिरता और दृढ़ता को स्वभाव के रूप में अपनाओ।

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सब्र के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ ''सेवा, त्याग, बलिदान'' को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिए कि ''राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबिले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबिले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।''

6-4-1928 *वन्देमातरम!*

भगवतीचरण वोहरा बी.ए., प्रचार मन्त्री, नौजवान भारत सभा द्वारा अरोड़ वंश प्रेस, लाहौर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है।

-- भगत सिंह द्वारा असेम्बली बम काण्ड पर जनवरी, 1930 में हाई कोर्ट में की गयी अपील से

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र

(लाहौर कांग्रेस में बाँटे गये इस दस्तावेज को मुख्य तौर पर भगवतीचरण वोहरा ने लिखा था। दुर्गा भाभी और अन्य क्रान्तिकारी साथियों ने इसे वहाँ वितरित किया। सी. आई.डी. ने इसे पकड़ लिया था और उसी के कागजों से इसकी प्रति मिली। -- सं.)

स्वतन्त्रता का पौधा शहीदों के रक्त से फलता है। भारत में स्वतन्त्रता का पौधा फलने के लिए दशकों से क्रान्तिकारी अपना रक्त बहाते रहे हैं। बहुत कम लोग हैं जो उनके मन में पाले हुए आदर्शों की उच्चता तथा उनके महान बलिदानों पर प्रश्नचिन्ह लगायें, लेकिन उनकी कार्यवाहियाँ गुप्त होने की वजह से उनके वर्तमान इरादे और नीतियों के बारे में देशवासी अँधेरे में हैं, इसलिए हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने यह घोषणा पत्र जारी करने की आवश्यकता महसूस की है।

विदेशियों की गुलामी से भारत की मुक्ति के लिए यह एसोसिएशन सशस्त्र संगठन द्वारा भारत में क्रान्ति के लिए दृढ़ संकल्प है। गुलाम रखे हुए लोगों की ओर से स्पष्ट तौर पर विद्रोह से पूर्व गुप्त प्रचार और गुप्त तैयारियाँ होनी आवश्यक हैं। जब देश क्रान्ति की उस अवस्था में आ जाता है तब विदेशी सरकार के लिए उसे रोकना कठिन हो जाता है। वह कुछ देर तक तो इसके सामने टिक सकती है, लेकिन उसका भविष्य सदा के लिए समाप्त हो चुका होता है। मानवीय स्वभाव भ्रमपूर्ण और यथास्थितिवादी होने के कारण क्रान्ति से एक प्रकार का भय प्रकट करता है। सामाजिक परिवर्तन सदा ही ताकत और विशेष सुविधाएँ माँगनेवालों के लिए भय पैदा करता है। क्रान्ति एक ऐसा करिश्मा है जिसे प्रकृति स्नेह करती है और जिसके बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती -- न प्रकृति में और न ही इनसानी कारोबार में। क्रान्ति निश्चय ही बिना सोची-समझी हत्याओं और आगजनी की दरिन्दा मुहिम नहीं है और न ही यहाँ-वहाँ चन्द बम फेंकना और गोलियाँ चलाना है; और न ही यह सभ्यता के सारे निशान मिटाने तथा समयोचित न्याय और समता के सिद्धान्त को खत्म करना है। क्रान्ति कोई मायूसी से पैदा हुआ दर्शन भी नहीं और न ही सरफरोशों का कोई सिद्धान्त है। क्रान्ति ईश्वर विरोधी हो सकती है लेकिन मनुष्य-विरोधी नहीं। यह एक पुख्ता और जिन्दा ताकत है। नये और पुराने के, जीवन और जिन्दा मौत के, रोशनी और अँधेरे के आन्तरिक द्वन्द्व का प्रदर्शन है, कोई संयोग नहीं है। न कोई संगीतमय एकसारता है और न ही कोई ताल है,

जो क्रान्ति के बिना आयी हो। 'गोलियों का राग' जिसके बारे में कवि गाते आये हैं, सच्चाई रहित हो जायेगा अगर क्रान्ति को समूची सृष्टि में से खत्म कर दिया जाये। क्रान्ति एक नियम है, क्रान्ति एक आदेश है और क्रान्ति एक सत्य है।

हमारे देश के नौजवानों ने इस सत्य को पहचान लिया है। उन्होंने बहुत कठिनाइयाँ सहते हुए यह सबक सीखा है कि क्रान्ति के बिना -- अफरा-तफरी, कानूनी गुण्डागर्दी और नफरत की जगह, जो आजकल हर ओर फैली हुई है -- व्यवस्था, कानूनपरस्ती और प्यार स्थापित नहीं किया जा सकता। हमारी आशीर्वाद भरी धरती पर किसी को ऐसा विचार नहीं आना चाहिए कि हमारे नौजवान गैर-जिम्मेदार हैं। वे पूरी तरह जानते हैं कि वे कहाँ खड़े हैं। उनसे बढ़कर किसे मालूम है कि उनकी राह कोई फूलों की सेज़ नहीं है। समय-समय पर उन्होंने अपने आदर्शों के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकायी है। इस कारण यह किसी के मुँह से नहीं निकलना चाहिए कि नौजवान उतावलेपन में किन्हीं मामूली बातों के पीछे लगे हुए हैं।

यह कोई अच्छी बात नहीं है कि हमारे आदर्शों पर कीचड़ उछाला जाता है। यह काफी होगा कि अगर आप जानें कि हमारे विचार बेहद मजबूत ओर तेज़-तर्रार हैं जो न सिर्फ हमें आगे बढ़ाये रखते हैं बल्कि फाँसी के तख्ते पर भी मुस्कराने की हिम्मत देते हैं।

आजकल यह फैशन-सा हो गया है कि अहिंसा के बारे में अन्धाधुन्ध और निरर्थक बात की जाये। महात्मा गाँधी महान हैं और हम उनके सम्मान पर कोई भी आँच नहीं लाने देना चाहते, लेकिन हम यह दृढ़ता से कहते हैं कि हम देश को स्वतन्त्र कराने के उनके ढंग को पूर्णतया नामंजूर करते हैं। यदि हम देश में चलाये जा रहे उनके असहयोग आन्दोलन द्वारा लोक-जागृति में उनकी भागीदारी के लिए उनको सलाम न करें तो यह हमारे लिए बड़ा नाशुक्रापन होगा। परन्तु हमारे लिए महात्मा असम्भवताओं का एक दार्शनिक है। अहिंसा भले ही एक नेक आदर्श है लेकिन यह अतीत की चीज है। जिस स्थिति में आज हम हैं, सिर्फ अहिंसा के रास्ते से कभी भी आजादी प्राप्त नहीं कर सकते। दुनिया सिर तक हथियारों से लैस है और [ऐसी] दुनिया पर हम हावी है। अमन की सारी बातें ईमानदार हो सकती हैं, लेकिन हम जो गुलाम कौम हैं, हमें ऐसे झूठे सिद्धान्तों के जरिए अपने रास्ते से नहीं भटकना चाहिए। हम पूछते हैं कि जब दुनिया का वातावरण हिंसा और गरीब की लूट से भरा हुआ है, तब देश को अहिंसा के रास्ते पर चलाने की क्या तुक है? हम अपने पूरे जोर के साथ कहते हैं कि कौम के नौजवान कच्ची नींद के ऐसे सपनों से रिझाये नहीं जा सकते।

हम हिंसा में विश्वास रखते हैं -- अपने आप में अन्तिम लक्ष्य के रूप में नहीं, बल्कि एक नेक परिणाम तक पहुँचने के लिए अपनाये गये तौर-तरीके के नाते। अहिंसा के पैरोकार और सावधानी के वकील यह बात तो मानते हैं कि हम

अपने यकीन पर चलने और उसके लिए कष्ट सहने के लिए तैयार रहते हैं। तो क्या हमें इसीलिए अपने साथियों की साझी माँ की बलिवेदी पर कुर्बानियों की गिनती करानी पड़ेगी? अंग्रेज सरकार की जेलों की चारदीवारी के अन्दर रूह कँपा देने और दिल की धड़कन पकड़नेवाले कई दृश्य खेले जा चुके हैं। हमें हमारी आतंकवादी नीति के कारण कई बार सज़ाएँ हुई हैं। हमारा जवाब है कि क्रान्तिकारियों का मुद्दा आतंकवाद नहीं होता; तो भी हम यह विश्वास रखते हैं कि आतंकवाद के रास्ते ही क्रान्ति आ जायेगी। पर इसमें कोई शक नहीं है कि क्रान्तिकारी बिल्कुल दुरुस्त सोचते हैं कि अंग्रेजी सरकार का मुँह मोड़ने के लिए इन तरीकों का इस्तेमाल करना ही कारगर तरीका है। अंग्रेजों की सरकार इसलिए चलती है, क्योंकि वे सारे भारत को भयभीत करने में कामयाब हुए हैं। हम इस सरकारी दहशत का किस तरह मुकाबला करें? सिर्फ क्रान्तिकारियों की ओर से मुकाबले की दहशत ही उनकी दहशत को रोकने में कामयाब हो सकती है। समाज में एक लाचारी की गहरी भावना फैली हुई है। इस खतरनाक मायूसी को कैसे दूर किया जाये? सिर्फ कुर्बानी की रूह को जगाकर खोये आत्म-विश्वास को जगाया जा सकता है। आतंकवाद का एक अन्तरराष्ट्रीय पहलू भी है। इंग्लैण्ड के काफी शत्रु हैं जो हमारी ताकत के पूर्ण प्रदर्शन से हमारी सहायता करने को तैयार हैं। यह भी एक बड़ा लाभ है।

भारत साम्राज्यवाद के जुए के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता और गरीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मजदूरों और किसानों की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है -- विदेशी पूँजीवाद का एक तरफ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ से खतरा है। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज बहुत-से गठजोड़ कर रहा है। कुछ राजनीतिक नेताओं का डोमिनियन [प्रभुतासम्पन्न] का रूप स्वीकार करना भी हवा के इसी रुख को स्पष्ट करता है।

भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ अब सिर्फ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव खत्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं। उनकी दुख सहने की तत्परता, उनकी बेखौफ बहादुरी और लहराती कुर्बानी दर्शाती है कि भारत का भविष्य उनके हाथ में सुरक्षित है। एक अनुभूतिमय घड़ी में देशबन्धु दास ने कहा था, ''नौजवान भारत माता की शान एवं आशाएँ हैं। आन्दोलन के पीछे उनकी प्रेरणा है, उनकी कुर्बानी है और उनकी जीत है। आजादी की राह पर मशालें लेकर चलनेवाले ये ही हैं। मुक्ति की राह पर ये तीर्थ यात्री हैं।''

भारतीय रिपब्लिक के नौजवानो, नहीं सिपाहियो, कतारबद्ध हो जाओ। आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक कदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन है। देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। वैसे ही खाली जिन्दगी न गँवाओ। बढ़ो, तुम्हारी जिन्दगी का हर पल इस तरह के तरीके और तरतीब ढूँढ़ने में लगना चाहिए, कि कैसे अपनी पुरातन धरती की आँखों में ज्वाला जागे और एक लम्बी अँगड़ाई लेकर जागे। अंग्रेज साम्राज्य के खिलाफ नवयुवकों के उर्वर हृदयों में एक उकसाहट और नफरत भर दो, ऐसे बीज डालो जोकि उगें और बड़े वृक्ष बन जायें क्योंकि इन बीजों को तुम अपने गर्म खून के जल से सींचोगे। तब एक भयानक भूचाल आयेगा, जो बड़े धमाके से गलत चीजों को नष्ट कर देगा और साम्राज्यवाद के महल को कुचलकर धूल में मिला देगा और यह तबाही महान होगी।

तब, और सिर्फ तभी, एक भारतीय कौम जागेगी, जो अपने गुणों और शान से इन्सानियत को हैरान कर देगी। तब चालाक और बलवान सदा से कमजोर लोगों से हैरान रह जायेंगे। तभी व्यक्तिगत मुक्ति भी सुरक्षित होगी और मेहनतकश की सरदारी और प्रभुसत्ता को सत्कारा जायेगा। हम ऐसी ही क्रान्ति के आने का सन्देश दे रहे हैं। क्रान्ति अमर रहे!

-- करतारसिंह, अध्यक्ष,
रिपब्लिकन प्रेस, अरहवन, भारत से प्रकाशित।

क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी की ताकत की वश की बात नहीं है और न ही यह किसी निश्चित तारीख को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से पैदा होती है.... क्रान्ति के दुस्साधय कार्य के लिए सभी शक्तियों को संगठित करना होता है। इस सबके लिए क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को अनेक कुर्बानियाँ देनी होती हैं।

-- भगत सिंह द्वारा फाँसी पर चढ़ने के कुछ सप्ताह पहले 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' लिखे पत्र से।

असेम्बली हॉल में फेंका गया पर्चा

(8 अप्रैल, सन् 1929 को असेम्बली में बम फेंकने के बाद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा बाँटे गये अंग्रेजी पर्चे का हिन्दी अनुवाद। -- सं.)

'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना'

सूचना

''बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है'', प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वैलियाँ के यह अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं।

पिछले दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने शासन-सुधार के नाम पर इस देश का जो अपमान किया है उसकी कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं और न ही हिन्दुस्तानी पार्लियामेण्ट पुकारी जानेवाली इस सभा ने भारतीय राष्ट्र के सिर पर पत्थर फेंककर उसका जो अपमान किया है, उसके उदाहरणों को याद दिलाने की आवश्यकता है। यह सब सर्वविदित और स्पष्ट है। आज फिर जब लोग 'साइमन कमीशन' से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आँखें फैलाये हैं और इन टुकड़ों के लोभ में आपस में झगड़ रहे हैं, विदेशी सरकार 'सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक' (पब्लिक सेफ्टी बिल) और 'औद्योगिक विवाद विधेयक' (ट्रेड्स डिस्प्यूट्स् बिल) के रूप में अपने दमन को और भी कड़ा कर लेने का यत्न कर रही है। इसके साथ ही आनेवाले अधिवेशन में 'अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून' (प्रेस सैडिशन एक्ट) जनता पर कसने की भी धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करनेवाले मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ यह स्पष्ट कर देती हैं कि सरकार किस रवैये पर चल रही है।

राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता को महसूस कर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाये। विदेशी शोषक नौकरशाही जो चाहे करे परन्तु उसकी वैधानिकता की नकाब फाड़ देना आवश्यक है।

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेण्ट के पाखण्ड को छोड़ कर अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जायें और जनता को

विदेशी दमन और शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बतला देना चाहते हैं कि हम 'सार्वजनिक सुरक्षा' और 'औद्योगिक विवाद' के दमनकारी कानूनों और लाला लाजपत राय की हत्या के विरोध में देश की जनता की ओर से यह कदम उठा रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम इनसान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुखी हैं। परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

इन्कलाब जिन्दाबाद!

ह.बलराज

कमाण्डर इन चीफ

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है -- अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करनेवाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करनेवाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति जरा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती।

-- असेम्बली बम काण्ड पर चल रहे मुकदमे के दौरान भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा दिल्ली की सेशन कोर्ट में दिये गये ऐतिहासिक बयान से।

बम का दर्शन

(राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान क्रान्तिकारियों की निन्दा में गाँधी जी ब्रिटिश सरकार से एक कदम आगे रहते थे। 23 दिसम्बर, 1929 को क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्तम्भ वाइसराय की गाड़ी को उड़ाने का प्रयास किया, लेकिन जो असफल रहा। गाँधी जी ने इस घटना पर एक कटुतापूर्ण लेख 'बम की पूजा' लिखा, जिसमें उन्होंने वाइसराय को देश का शुभचिन्तक और नवयुवकों को आजादी के रास्ते में रोड़ा अटकानेवाले कहा। इसी के जवाब में हि.स.प्र.स. की ओर से भगवतीचरण वोहरा ने 'बम का दर्शन' लेख लिखा, जिसका शीर्षक 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र समाजवादी सभा का घोषणापत्र' रखा। भगत सिंह ने जेल में इसे अन्तिम रूप दिया। 26 जनवरी, 1930 को इसे देश-भर में बाँटा गया। -- सं.)

हाल ही की घटनाएँ! विशेष रूप से 23 दिसम्बर, 1929 को वाइसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने का जो प्रयत्न किया गया था, उसकी निन्दा करते हुए कांग्रेस द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा 'यंग इण्डिया' में गाँधी जी द्वारा लिखे गये लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गाँधी जी से साँठ-गाँठ कर भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध घोर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है। जनता के बीच भाषणों तथा पत्रों के माध्यम से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बराबर प्रचार किया जाता रहा है। या तो यह जान-बूझकर किया गया या फिर केवल अज्ञान के कारण उनके विषय में गलत प्रचार होता रहा और उन्हें गलत समझा जाता रहा; परन्तु क्रान्तिकारी अपने सिद्धान्तों तथा कार्यों की ऐसी आलोचना से नहीं घबराते हैं। बल्कि वे ऐसी आलोचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इसे इस बात का स्वर्णावसर मानते है कि ऐसा करने से उन्हें उन लोगों को क्रान्तिकारियों के मूलभूत सिद्धान्तों तथा उच्चादर्शों को, जो उनकी प्रेरणा तथा शक्ति के अनवरत स्रोत हैं, समझाने का अवसर मिलता है। आशा की जाती है कि इस लेख द्वारा आम जनता को यह जानने का अवसर मिलेगा कि क्रान्तिकारी क्या हैं, और उनके विरुद्ध किये गये, भ्रमात्मक प्रचार से उत्पन्न होने वाली गलतफहमियों से उन्हें बचाया जा सकेगा।

पहले हम हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर ही विचार करें। हमारे विचार से इन शब्दों का प्रयोग ही गलत किया गया है, और ऐसा करना ही दोनों दलों के साथ अन्याय करना है, क्योंकि इन शब्दों से दोनों ही दलों के सिद्धान्तों का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल-प्रयोग, परन्तु क्रान्तिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धान्त। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त

में अपने विरोधी का हृदय-परिवर्तन सम्भव हो सकेगा।

एक क्रान्तिकारी जब कुछ बातों को अपना अधिकार मान लेता है तो वह उनकी माँग करता है, अपनी उस माँग के पक्ष में दलीलें देता है, समस्त आत्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसकी प्राप्ति के लिए अत्यधिक कष्ट सहन करता है, इसके लिए वह बड़े-से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है और उसके समर्थन में वह अपना समस्त शारीरिक बल-प्रयोग भी करता है। इसके इन प्रयत्नों को आप चाहे जिस नाम से पुकारें, परन्तु आप इन्हें हिंसा के नाम से सम्बोधित नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना कोष में दिये इस शब्द के अर्थ के साथ अन्याय होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का ही आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल-प्रयोग भी [क्यों] न किया जाये? क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करनेवाले शारीरिक बल-प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं हैं कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा, बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं, या केवल आत्मिक शक्ति का?

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतन्त्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का केवल सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जायें। क्रान्ति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूरों तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनीतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रान्तिकारी उसी में प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है। नवयुवक जैसे-जैसे मनोविज्ञान आत्मसात् करता जायेगा वैसे-वैसे राष्ट्र की गुलामी का चित्र उसके सामने स्पष्ट होता जायेगा तथा उसकी देश को स्वतन्त्र करने की इच्छा प्रबल होती जायेगी। और उसका यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि युवक न्याय, क्रोध और क्षोभ से ओतप्रोत हो अन्याय करनेवालों की हत्या न प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार देश में आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धान्त का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा कर पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर उसे शक्ति प्रदान करता

है। अस्थिर भावनावाले लोगों को इससे हिम्मत बँधती है तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। इससे दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता की उत्कट महत्त्वाकांक्षा का विश्वास दिलानेवाले प्रमाण हैं, जैसे -- दूसरे देशों में होता आया है, वैसे ही भारत में भी आतंकवाद क्रान्ति का रूप धारण कर लेगा और अन्त में क्रान्ति से ही देश को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

तो यह हैं क्रान्तिकारी के सिद्धान्त, जिनमें वह विश्वास करता है और जिन्हें देश के लिए प्राप्त करना चाहता है। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए वह गुप्त तथा खुले-आम दोनों ही तरीकों से प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार एक शताब्दी से संसार में जनता तथा शासक वर्ग में जो संघर्ष चला आ रहा है, वही अनुभव उसके लक्ष्य पर पहुँचने का मार्गदर्शक है। क्रान्तिकारी जिन तरीकों में विश्वास करता है, वे कभी असफल नहीं हुए।

इस बीच कांग्रेस क्या कर रही थी? उसने अपना ध्येय स्वराज्य से बदलकर पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया। इस घोषणा से कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न कर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस का पहला वार था उसका वह प्रस्ताव जिसमें 23 दिसम्बर, 1929 को वाइसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने के प्रयत्न की निन्दा की गयी। इस प्रस्ताव का मसविदा गाँधी जी ने तैयार किया था और उसे पारित कराने के लिए गाँधी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। परिणाम यह हुआ कि 1913 की सदस्य संख्या में वह केवल 31 अधिक मतों से पारित हो सका। क्या इस अत्यल्प बहुमत में भी राजनीतिक ईमानदारी थी? इस सम्बन्ध में हम सरलादेवी चौधरानी का मत ही यहाँ उद्धृत करें। वे तो जीवन-भर कांग्रेस की भक्त रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है -- मैंने महात्मा गाँधी के अनुयायियों के साथ इस विषय में जो बातचीत की, उससे मुझे मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार महात्मा जी के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के कारण प्रकट न कर सके, तथा इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने में असमर्थ रहे, जिसके प्रणेता महात्मा जी थे। जहाँ तक गाँधी जी की दलील का प्रश्न है, उस पर हम बाद में विचार करेंगे। उन्होंने जो दलीलें दी हैं वे कुछ कम या अधिक इस सम्बन्ध में कांग्रेस में दिये गये भाषण का ही विस्तृत रूप है।

इस दुखद प्रस्ताव के विषय में एक बात मार्के की है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते, वह यह कि यह सर्वविदित है कि कांग्रेस अहिंसा का सिद्धान्त मानती है और पिछले दस वर्षों से वह इसके समर्थन में प्रचार करती रही है। यह सब होने पर भी प्रस्ताव के समर्थन में भाषणों में गाली-गलौज की गयी। उन्होंने क्रान्तिकारियों को बुजदिल कहा और उनके कार्यों को घृणित। उनमें से एक वक्ता ने धमकी देते हुए यहाँ तक कह डाला कि यदि वे (सदस्य) गाँधी जी का नेतृत्व चाहते हैं तो उन्हें इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करना चाहिए। इतना सबकुछ किये जाने पर भी यह प्रस्ताव बहुत थोड़े मतों से ही पारित हो सका। इससे यह बात निशंक प्रमाणित हो जाती है कि देश की जनता

पर्याप्त संख्या में क्रान्तिकारियों का समर्थन कर रही है। इस तरह से इसके लिए गाँधी जी हमारी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न पर विवाद खड़ा किया और इस प्रकार संसार को दिखा दिया कि कांग्रेस, जो अहिंसा का गढ़ माना जाता है, वह सम्पूर्ण नहीं तो एक हद तक तो कांग्रेस से अधिक क्रान्तिकारियों के साथ है।

इस विषय में गाँधी जी ने जो विजय प्राप्त की वह एक प्रकार की हार ही के बराबर थी और अब वे 'दि कल्ट ऑफ दि बम' लेख द्वारा क्रान्तिकारियों पर दूसरा हमला कर बैठे हैं। इस सम्बन्ध में आगे कुछ कहने से पूर्व इस लेख पर हम अच्छी तरह विचार करेंगे। इस लेख में उन्होंने तीन बातों का उल्लेख किया है। उनका विश्वास, उनके विचार और उनका मत। हम उनके विश्वास के सम्बन्ध में विश्लेषण नहीं करेंगे, क्योंकि विश्वास में तर्क के लिए स्थान नहीं है। गाँधी जी जिसे हिंसा कहते हैं और जिसके विरुद्ध उन्होंने जो तर्कसंगत विचार प्रकट किये हैं, हम उनका सिलसिलेवार विश्लेषण करें।

गाँधी जी सोचते हैं कि उनकी यह धारणा सही है कि अधिकतर भारतीय जनता को हिंसा की भावना छू तक नहीं गयी है और अहिंसा उनका राजनीतिक शस्त्र बन गया है। हाल ही में उन्होंने देश का जो भ्रमण किया है उस अनुभव के आधार पर उनकी यह धारणा बनी है, परन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा के इस अनुभव से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए। यह बात सही है कि (कांग्रेस) नेता अपने दौरे वहीं तक सीमित रखता है जहाँ तक डाक गाड़ी उसे आराम से पहुँचा सकती है, जबकि गाँधी जी ने अपनी यात्रा का दायरा वहाँ तक बढ़ा दिया है जहाँ तक कि मोटरकार द्वारा वे जा सकें। इस यात्रा में वे धनी व्यक्तियों के ही निवास स्थानों पर रुके। इस यात्रा का अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गयी उनकी प्रशंसा, सभाओं में यदा-कदा अशिक्षित जनता को दिये जानेवाले दर्शनों में बीता, जिसके विषय में उनका दावा है कि वे उन्हें अच्छी तरह समझते हैं, परन्तु यही बात इस दलील के विरुद्ध है कि वे आम जनता की विचारधारा को जानते हैं।

कोई व्यक्ति जन-साधारण की विचारधारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता। वह तो केवल इतना ही दावा कर सकता है कि उसने विभिन्न विषयों पर अपने विचार जनता के सामने रखे। क्या गाँधी जी ने इन वर्षों में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया? क्या कभी उन्होंने किसी सन्ध्या को गाँव की किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया? क्या किसी कारखाने के मजदूर के साथ एक भी शाम गुजारकर उसके विचार समझने की कोशिश की है? पर हमने यह किया है और इसीलिए हम दावा करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं। हम गाँधी जी को विश्वास दिलाते हैं कि साधारण भारतीय साधारण मानव के समान ही अहिंसा तथा अपने शत्रु से प्रेम करने की आध्यात्मिक भावना को बहुत कम समझता है। संसार का तो यही नियम है -- तुम्हारा एक मित्र है, तुम उससे स्नेह करते हो, कभी-कभी तो इतना अधिक कि तुम उसके लिए अपने प्राण भी दे देते हो। तुम्हारा शत्रु है, तुम उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते

हो। क्रान्तिकारियों का यह सिद्धान्त नितान्त सत्य, सरल और सीधा है और यह ध्रुव सत्य आदम और हौवा के समय से चला आ रहा है तथा इसे समझने में कभी किसी को कठिनाई नहीं हुई। हम यह बात स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब लोग क्रान्तिकारी विचारधारा को सक्रिय रूप देने के लिए हजारों की संख्या में जमा होंगे।

गाँधी जी घोषणा करते हैं कि अहिंसा के सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बना लेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की इस चमत्कार की 'प्रेम संहिता' के प्रचार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। वे अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयायियों ने भी किया है। परन्तु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय-परिवर्तन कर वे उन्हें भारत का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं? वे कितने ओडायरों, डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं? यदि किसी को भी नहीं तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इंग्लैण्ड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझाकर इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतन्त्रता दे दे।

यदि वाइसराय की गाड़ी के नीचे बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो दो में से एक बात अवश्य हुई होती, या तो वाइसराय अत्यधिक घायल हो जाते या उनकी मृत्यु हो गयी होती। ऐसी स्थिति में वाइसराय तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच मन्त्रणा न हो पाती, यह प्रयत्न रुक जाता और उससे राष्ट्र का भला ही होता। कलकत्ता कांग्रेस की चुनौती के बाद भी स्वशासन की भीख माँगने के लिए वाइसराय भवन के आसपास मँडराने वालों के ये घृणास्पद प्रयत्न विफल हो जाते। यदि बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो भारत का एक शत्रु उचित सज़ा पा जाता। 'मेरठ' तथा 'लाहौर-षड्यन्त्र' और 'भुसावल काण्ड' का मुकदमा चलानेवाले केवल भारत के शत्रुओं को ही मित्र प्रतीत हो सकते हैं। साइमन कमीशन के सामूहिक विरोध से देश में जो एकजुटता स्थापित हो गयी थी, गाँधी तथा नेहरू की राजनीतिक 'बुद्धिमत्ता' के बाद ही इरविन उसे छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो सका। आज कांग्रेस में भी आपस में फूट पड़ गयी है। हमारे इस दुर्भाग्य के लिए वाइसराय या उसके चाटुकारों के सिवा कौन जिम्मेदार हो सकता है! इस पर भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो उसे भारत का मित्र कहते हैं।

देश में ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें कांग्रेस के प्रति श्रद्धा नहीं, इससे वे कुछ आशा भी नहीं करते। यदि गाँधी जी क्रान्तिकारियों को इस श्रेणी में गिनते हैं तो वे उनके साथ अन्याय करते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस ने जन-जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत की है, गोकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक कांग्रेस में सेन गुप्ता जैसे 'अद्‌भुत प्रतिभाशाली' व्यक्तियों का, जो वाइसराय की ट्रेन उड़ाने में गुप्तचर विभाग का हाथ होने की बात करते

हैं, तथा अन्सारी जैसे लोग, जो राजनीति कम जानते हैं और उचित तर्क की उपेक्षा कर बेतुकी और तर्कहीन दलील देकर यह कहते हैं कि किसी राष्ट्र ने बम से स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की -- जब तक कांग्रेस के निर्णयों में इनके-जैसे विचारों का प्राधान्य रहेगा, तब तक देश उससे बहुत कम आशा कर सकता है। क्रान्तिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कांग्रेसी आन्दोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जायेगी और वह क्रान्तिकारियों के कन्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण स्वतन्त्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेगी। इस वर्ष कांग्रेस ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, जिसका प्रतिपादन क्रान्तिकारी पिछले 25 वर्षों से करते चले आ रहे हैं। हम आशा करें कि अगले वर्ष वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के तरीकों का भी समर्थन करेगी।

गाँधी जी यह प्रतिपादित करते हैं कि जब-जब हिंसा का प्रयोग हुआ है तब-तब सैनिक खर्च बढ़ा है। यदि उनका मन्तव्य क्रान्तिकारियों की पिछली 25 वर्षों की गतिविधियों से है तो हम उनके वक्तव्य को चुनौती देते हैं कि वे अपने इस कथन को तथ्य और आँकड़ों से सिद्ध करें। बल्कि हम तो यह कहेंगे कि उनके अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोगों का परिणाम, जिनकी तुलना स्वतन्त्रता संग्राम से नहीं की जा सकती, नौकरशाही अर्थ-व्यवस्था पर हुआ है। आन्दोलनों का, फिर वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक, सफल हों या असफल, परिणाम तो भारत की अर्थव्यवस्था पर होगा ही।

हमें समझ नहीं आता कि देश में सरकार ने जो विभिन्न वैधानिक सुधार किये, गाँधी जी उनमें हमें क्यों उलझाते हैं? उन्होंने मार्लोमिण्टो रिफार्म, माण्टेग्यु रिफार्म या ऐसे ही अन्य सुधारों की न तो कभी परवाह की और न ही उनके लिए आन्दोलन किया। ब्रिटिश सरकार ने तो यह टुकड़े वैधानिक आन्दोलनकारियों के सामने फेंके थे, जिससे उन्हें उचित मार्ग पर चलने से पथभ्रष्ट किया जा सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तो यह घूस दी थी, जिससे वे क्रान्तिकारियों को समूल नष्ट करने की उनकी नीति के साथ सहयोग करें। गाँधी जी जैसा कि इन्हें सम्बोधित करते हैं, कि भारत के लिए ये खिलौने-जैसे हैं, उन लोगों को बहलाने-फुसलाने के लिए जो समय-समय पर होम रूल, स्वशासन, जिम्मेदार सरकार, पूर्ण जिम्मेदार सरकार, औपनिवेशिक स्वराज्य जैसे अनेक वैधानिक नाम जो गुलामी के हैं, माँग करते हैं। क्रान्तिकारियों का लक्ष्य तो शासन-सुधार का नहीं है, वे तो स्वतन्त्रता का स्तर कभी का ऊँचा कर चुके हैं और वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बलिदान कर रहे हैं। उनका दावा है कि उनके बलिदानों ने जनता की विचारधारा में प्रचण्ड परिवर्तन किया है। उसके प्रयत्नों से वे देश को स्वतन्त्रता के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ा ले गये हैं और यह बात उनसे राजनीतिक क्षेत्र में मतभेद रखनेवाले लोग भी स्वीकार करते हैं।

गाँधी जी का कथन है कि हिंसा से प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होकर स्वतन्त्रता पाने का दिन स्थगित होता जाता है, तो हम इस विषय में अनेक ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनमें जिन देशों ने हिंसा से काम लिया उनकी सामाजिक प्रगति होकर उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। हम रूस तथा तुर्की का ही उदाहरण लें। दोनों ने हिंसा के उपायों

से ही सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता प्राप्त की। उसके बाद भी सामाजिक सुधारों के कारण वहाँ की जनता ने बड़ी तीव्र गति से प्रगति की। एकमात्र अफगानिस्तान के उदाहरण से राजनीतिक सूत्र सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह तो अपवाद मात्र है।

गाँधी जी के विचार में 'असहयोग आन्दोलन के समय जो जन-जागृति हुई है वह अहिंसा के उपदेश का ही परिणाम था।' परन्तु यह धारणा गलत है और यह श्रेय अहिंसा को देना भी भूल है, क्योंकि जहाँ भी अत्यधिक जन-जागृति हुई वह सीधेमोर्चे की कार्रवाई से हुई। उदाहरणार्थ, रूस में शक्तिशाली जन-आन्दोलन से ही वहाँ किसान और मजदूरों में जागृति उत्पन्न हुई। उन्हें तो किसी ने अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था, बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि अहिंसा तथा गाँधी जी की समझौता-नीति से ही उन शक्तियों में फूट पड़ गयी जो सामूहिक मोर्चे के नारे से एक हो गयी थीं। यह प्रतिपादित किया जाता है कि राजनीतिक अन्यायों का मुकाबला अहिंसा के शस्त्र से किया जा सकता है, पर इस विषय में संक्षेप में तो यही कहा जा सकता है कि यह अनोखा विचार है, जिसका अभी प्रयोग नहीं हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के जो न्यायोचित अधिकार माँगे जाते थे उन्हें प्राप्त करने में अहिंसा का शस्त्र असफल रहा। वह भारत को स्वराज्य दिलाने में भी असफल रहा, जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना उसके लिए प्रयत्न करती रही तथा उस पर लगभग सवा करोड़ रुपया भी खर्च किया गया। हाल ही में बारदोली सत्याग्रह में इसकी असफलता सिद्ध हो चुकी है। इस अवसर पर सत्याग्रह के नेता गाँधी और पटेल ने बारदोली के किसानों को जो कम-से-कम अधिकार दिलाने का आश्वासन दिया था, उसे भी वे न दिला सके। इसके अतिरिक्त अन्य किसी देशव्यापी आन्दोलन की बात हमें मालूम नहीं। अब तक इस अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला और वह था असफलता का। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य नहीं कि देश ने फिर उनके प्रयोग से इनकार कर दिया। वास्तव में गाँधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आन्दोलन है, एक विरोध है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है, जैसाकि प्रत्यक्ष देखा गया है। इसलिए जितनी जल्दी हम समझ लें कि स्वतन्त्रता और गुलामी में कोई समझौता नहीं हो सकता, उतना ही अच्छा है।

गाँधी जी सोचते हैं 'हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं।' परन्तु कांग्रेस विधान में शब्दों का हेर-फेर मात्र कर, अर्थात् स्वराज्य को पूर्ण स्वतन्त्रता कह देने से नया युग प्रारम्भ नहीं हो जाता। वह दिन वास्तव में एक महान दिवस होगा जब कांग्रेस देशव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ करने का निर्णय करेगी, जिसका आधार सर्वमान्य क्रान्तिकारी सिद्धान्त होंगे। ऐसे समय तक स्वतन्त्रता का झण्डा फहराना हास्यास्पद होगा। इस विषय में हम सरलादेवी चौधरानी के उन विचारों से सहमत हैं जो उन्होंने एक पत्र-सम्वाददाता को भेंट में व्यक्त किये। उन्होंने कहा :'31 दिसम्बर, 1929 की अर्धरात्रि के ठीक एक मिनट बाद स्वतन्त्रता का झण्डा फहराना एक विचित्र घटना है। उस समय जी ओ सी, असिस्टेण्ट जी ओ सी तथा अन्य लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि स्वतन्त्रता का झण्डा

फहराने का निर्णय आधी रात तक अधर में लटका है, क्योंकि यदि वाइसराय या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का कांग्रेस को यह सन्देश आ जाता है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया है, तो रात्रि को 11 बजकर 59 मिनट पर भी स्थिति में परिवर्तन हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का ध्येय नेताओं की हार्दिक इच्छा नहीं थी, बल्कि एक बाल हठ के समान था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए उचित तो यही होता कि वह पहले स्वतन्त्रता प्राप्त कर फिर उसकी घोषणा करती।' यह सच है कि अब औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय कांग्रेस के वक्ता जनता के सामने पूर्ण स्वतन्त्रता का ढोल पीटेंगे। वे अब जनता से कहेंगे कि जनता को उस संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए जिसमें एक पक्ष तो मुक्केबाजी करेगा और दूसरा उन्हें केवल सहता रहेगा, जब तक कि वह खूब पिटकर इतना हताश न हो जाये कि फिर न उठ सके। क्या उसे संघर्ष कहा जा सकता है और क्या इससे देश को स्वतन्त्रता मिल सकती है? किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य-प्राप्ति का ध्येय सामने रखना अच्छा है, परन्तु साथ में यह भी आवश्यक है इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन साधनों का उपयोग किया जाये जो योग्य हों और जो पहले उपयोग में आ चुके हों, अन्यथा संसार के सम्मुख हमारे हास्यास्पद बनने का भय बना रहेगा।

गाँधी जी ने सभी विचारशील लोगों से कहा कि वे लोग क्रान्तिकारियों से सहयोग करना बन्द कर दें तथा उनके कार्यों की निन्दा करें, जिससे हमारे इस प्रकार उपेक्षित देशभक्तों की हिंसात्मक कार्यों से जो हानि हुई, उसे समझ सकें। लोगों को उपेक्षित तथा पुरानी दलीलों के समर्थक कह देना जितना आसान है, उसी प्रकार उनकी निन्दा कर जनता से उनसे सहयोग न करने को कहना, जिससे वे अलग-अलग हो अपना कार्यक्रम स्थगित करने के लिए बाध्य हो जायें, यह सब करना विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए आसान होगा जो कि जनता के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का विश्वासपात्र हो। गाँधी जी ने जीवन-भर जन-जीवन का अनुभव किया है, पर यह बड़े दुख की बात है कि वे भी क्रान्तिकारियों का मनोविज्ञान न तो समझते हैं और न समझना ही चाहते हैं। वह सिद्धान्त अमूल्य है, जो प्रत्येक क्रान्तिकारी को प्रिय है। जो व्यक्ति क्रान्तिकारी बनता है, जब वह अपना सिर हथेली पर रखकर किसी क्षण भी आत्मबलिदान के लिए तैयार रहता है तो वह केवल खेल के लिए नहीं। वह यह त्याग और बलिदान इसलिए भी नहीं करता कि जब जनता उसके साथ सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो तो उसकी जय-जयकार करे। वह इस मार्ग का इसलिए अवलम्बन करता है कि उसका सद्विवेक उसे इसकी प्रेरणा देता है, उसकी आत्मा उसे इसके लिए प्रेरित करती है।

एक क्रान्तिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है। वह केवल तर्क और तर्क में ही विश्वास करता है। किसी प्रकार का गाली-गलौच या निन्दा, चाहे फिर वह ऊँचे-से-ऊँचे स्तर से की गयी हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य-प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती। यह सोचना कि यदि जनता का सहयोग न मिला या उसके कार्य की प्रशंसा न की गयी तो वह अपने उद्देश्य को छोड़ देगा, निरी मूर्खता है। अनेक क्रान्तिकारी, जिनके

कार्यों की वैधानिक आन्दोलनकारियों ने घोर निन्दा की, फिर भी वे उसकी परवाह न कर फाँसी के तख्ते पर झूल गये। यदि तुम चाहते हो कि क्रान्तिकारी अपनी गतिविधियों को स्थगित कर दें तो उसके लिए होना तो यह चाहिए कि उनके साथ तर्क द्वारा अपना मत प्रमाणित किया जाये। यह एक, और केवल यही एक रास्ता है, और बाकी बातों के विषय में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। क्रान्तिकारी इस प्रकार के डराने-धमकाने के कदापि हार माननेवाला नहीं।

हम प्रत्येक देशभक्त से निवेदन करते हैं कि वे हमारे साथ गम्भीरता पूर्वक इस युद्ध में शामिल हों। कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबो-गरीब तरीकों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के साथ खिलवाड़ न करे। स्वतन्त्रता राष्ट्र का प्राण है। हमारी गुलामी हमारे लिए लज्जास्पद है, न जाने कब हममें यह बुद्धि और साहस होगा कि हम उससे मुक्ति प्राप्त कर स्वतन्त्र हो सकें? हमारी प्राचीन सभ्यता और गौरव की विरासत का क्या लाभ, यदि हममें यह स्वाभिमान न रहे कि हम विदेशी गुलामी, विदेशी झण्डे ओर बादशाह के सामने सिर झुकाने से अपने आपको न रोक सकें!

क्या यह अपराध नहीं है कि ब्रिटेन ने भारत में अनैतिक शासन किया? हमें भिखारी बनाया; तथा हमारा समस्त खून चूस लिया? एक जाति और मानवता के नाते हमारा घोर अपमान तथा शोषण किया गया है। क्या जनता अब भी चाहती है कि इस अपमान को भुलाकर हम ब्रिटिश शासकों को क्षमा कर दें! हम बदला लेंगे, जो जनता द्वारा शासकों से लिया गया न्यायोचित बदला होगा। कायरों को पीठ दिखाकर समझौता और शान्ति की आशा से चिपके रहने दीजिए। हम किसी से भी दया की भिक्षा नहीं माँगते हैं और हम भी किसी को क्षमा नहीं करेंगे। हमारा युद्ध विजय या मृत्यु के निर्णय तक चलता ही रहेगा। क्रान्ति चिरंजीवी हो!

करतारसिंह
प्रेज़ीडेण्ट

अदालत एक ढकोसला है : छह साथियों का एलान

कमिश्नर,
विशेष ट्रिब्यूनल,
लाहौर साजिश केस, लाहौर

जनाब,

अपने छह साथियों की ओर से, जिनमें कि मैं भी शामिल हूँ, निम्नलिखित स्पष्टीकरण इस सुनवाई के शुरू में ही देना आवश्यक है। हम चाहते हैं कि यह दर्ज किया जाये।

हम मुकदमे की कार्यवाही में किसी भी प्रकार भाग नहीं लेना चाहते, क्योंकि हम इस सरकार को न तो न्याय पर आधारित समझते हैं और न ही कानूनी तौर पर स्थापित। हम अपने विश्वास से यह घोषणा करते हैं कि ''समस्त शक्ति का आधार मनुष्य है। कोई व्यक्ति या सरकार किसी भी ऐसी शक्ति की हकदार नहीं है जो जनता ने उसको न दी हो।'' क्योंकि यह सरकार इन सिद्धान्तों के विपरीत है इसलिए इसका अस्तित्व ही उचित नहीं है। ऐसी सरकारें जो राष्ट्रों को लूटने के लिए एकजुट हो जाती हैं उनमें तलवार की शक्ति के अलावा कोई आधार कायम रहने के लिए नहीं होता। इसीलिए वे वहशी ताकत के साथ मुक्ति और आजादी के विचार और लोगों की उचित इच्छाओं को कुचलती हैं।

हमारा विश्वास है कि ऐसी सरकारें, विशेषकर अंग्रेजी सरकार जो असहाय और असहमत भारतीय राष्ट्र पर थोपी गयी है, गुण्डों, डाकुओं का गिरोह और लुटेरों का टोला है जिसने कत्लेआम करने और लोगों को विस्थापित करने के लिए सब प्रकार की शक्तियाँ जुटाई हुई हैं। शान्ति-व्यवस्था के नाम पर यह अपने विरोधियों या रहस्य खोलनेवाले को कुचल देती है।

हमारा यह भी विश्वास है कि साम्राज्यवाद एक बड़ी डाकेजनी की साजिश के अलावा कुछ नहीं। साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम है। साम्राज्यवादी अपने हितों, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ न्यायालयों एवं कानून को कत्ल करते हैं, बल्कि भयंकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते हैं। अपने शोषण को पूरा करने के लिए

जंग-जैसे खौफनाक अपराध भी करते हैं। जहाँ कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी माँगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देनेवाली और घृणा योग्य साजिशों को मानने से इन्कार कर दें तो वह निरपराधियों का खून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति-व्यवस्था भंग करते हैं। भगदड़ मचाते हुए लोगों की हत्या, अर्थात हर सम्भव दमन करते हैं।

हम मानते हैं कि स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का अमिट अधिकार है। हर मनुष्य को अपने श्रम का फल पाने-जैसा सभी प्रकार का अधिकार है और प्रत्येक राष्ट्र अपने मूलभूत प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण स्वामी है। अगर कोई सरकार जनता को उसके इन मूलभूत अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को समाप्त कर दे। क्योंकि ब्रिटिश सरकार इन सिद्धान्तों, जिनके लिए हम लड़ रहे हैं, के बिल्कुल विपरीत है, इसलिए हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस भी ढंग से देश में क्रान्ति लायी जा सके और इस सरकार का पूरी तरह खात्मा किया जा सके, इसके लिए हर प्रयास और अपनाये गये सभी ढंग नैतिक स्तर पर उचित हैं। हम वर्तमान ढाँचे के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं। हम वर्तमान समाज को पूरे तौर पर एक नये सुगठित समाज में बदलना चाहते हैं। इस तरह मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव बनाकर सभी के लिए सब क्षेत्रों में पूरी स्वतन्त्रता विश्वसनीय बनायी जाये। जब तक सारा सामाजिक ढाँचा बदला नहीं जाता और उसके स्थान पर समाजवादी समाज स्थापित नहीं होता, हम महसूस करते हैं कि सारी दुनिया एक तबाह कर देनेवाले प्रलय-संकट में है।

जहाँ तक शान्तिपूर्ण या अन्य तरीकों से क्रान्तिकारी आदर्शों की स्थापना का सम्बन्ध है, हम घोषणा करते हैं कि इसका चुनाव तत्कालीन शासकों की मर्जी पर निर्भर है। क्रान्तिकारी अपने मानवीय प्यार के गुणों के कारण मानवता के पुजारी हैं। हम शाश्वत और वास्तविक शान्ति चाहते हैं, जिसका आधार न्याय और समानता है। हम झूठी और दिखावटी शान्ति के समर्थक नहीं जो बुजदिली से पैदा होती है और भालों और बन्दूकों के सहारे जीवित रहती है।

क्रान्तिकारी अगर बम और पिस्तौल का सहारा लेता है तो यह उसकी चरम आवश्यकता से पैदा होता है और आखिरी दाँव के तौर पर होता है। हमारा विश्वास है कि अमन और कानून मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य अमन और कानून के लिए।

फ्रांस के उच्च न्यायाधीश का यह कहना उचित है कि कानून की आन्तरिक भावना स्वतन्त्रता समाप्त करना या प्रतिबन्ध लगाना नहीं, वरन स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना और उसे आगे बढ़ाना है। सरकार को कानूनी शक्ति बनाये गये उन उचित कानूनों से मिलेगी जो केवल सामूहिक हितों के लिए बनाये गये हैं,

और जो जनता की इच्छाओं पर आधारित हों, जिनके लिए यह बनाये गये हैं। इससे विधायकों समेत कोई भी बाहर नहीं हो सकता।

कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्त्व खो बैठता है। न्याय प्रदान करने के लिए मूल बात यह है कि हर तरह के लाभ या हित का खात्मा होना चाहिए। ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की दम्भपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।

वर्तमान सरकार के कानून विदेशी शासन के हितों के लिए चलते हैं और हम लोगों के हितों के विपरीत हैं। इसलिए इनकी हमारे ऊपर किसी भी प्रकार की सदाचारिता लागू नहीं होती।

अत: हर भारतीय की यह जिम्मेदारी बनती है कि इन कानूनों को चुनौती दे और इनका उल्लंघन करे। अंग्रेज न्यायालय, जो शोषण के पुर्जे हैं, न्याय नहीं दे सकते। विशेषकर राजनीतिक क्षेत्रों में, जहाँ सरकार और लोगों के हितों का टकराव है। हम जानते हैं कि ये न्यायालय सिवाय न्याय के ढकोसले के और कुछ नहीं हैं।

इन्हीं कारणों से हम इसमें भागीदारी करने से इन्कार करते हैं और इस मुकदमे की कार्यवाही में भाग नहीं लेंगे।

5-5-30

जज ने नोट किया -- यह रिकार्ड में तो रखा जाये लेकिन इसकी कापी न दी जाये, क्योंकि इसमें कुछ अनचाही बातें लिखी हैं।

अगर कोई सरकार जनता को उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को तबाह कर दे।

-- भगत सिंह और 5 अन्य क्रान्तिकारियों पर बैठाये गये विशेष ट्रिब्यूनल को उनके द्वारा 5 मई, 1930 के लिखे गये पत्र से।

पिता जी के नाम पत्र

(30 सितम्बर, 1930 को भगत सिंह के पिता सरदार किशनसिंह ने ट्रिब्यूनल को एक अर्जी देकर बचाव पेश करने के लिए अवसर की माँग की। सरदार किशनसिंह स्वयं देशभक्त थे और राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल जाते रहते थे। उन्हें व कुछ अन्य देशभक्तों को लगता था कि शायद बचाव-पक्ष पेश कर भगत सिंह को फाँसी के पफन्दे से बचाया जा सकता है, लेकिन भगत सिंह और उनके साथी बिल्कुल अलग नीति पर चल रहे थे। उनके अनुसार, ब्रिटिश सरकार बदला लेने की नीति पर चल रही है व न्याय सिपर्फ ढकोसला है। किसी भी तरीके से उसे सजा देने से रोका नहीं जा सकता। उन्हें लगता था कि यदि इस मामले में कमजोरी दिखायी गयी तो जन-चेतना में अंकुरित हुआ क्रान्ति-बीज स्थिर नहीं हो पायेगा। पिता द्वारा दी गयी अर्जी से भगत सिंह की भावनाओं को भी चोट लगी थी, लेकिन अपनी भावनाओं को नियन्त्रित कर अपने सिद्धान्तों पर जोर देते हुए उन्होंने 4 अक्तूबर, 1930 को यह पत्र लिखा जो उसके पिता को देर से मिला। 7 अक्तूबर, 1930 को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। -- सं.)

4 अक्तूबर, 1930

पूज्य पिता जी,

मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि आपने मेरे बचाव-पक्ष के लिए स्पेशल ट्रिब्यूनल को एक आवेदन भेजा है। यह खबर इतनी यातनामय थी कि मैं इसे खामोशी से बर्दाश्त नहीं कर सका। इस खबर ने मेरे भीतर की शान्ति भंग कर उथल-पुथल मचा दी है। मैं यह नहीं समझ सकता कि वर्तमान स्थितियों में और इस मामले पर आप किस तरह का आवेदन दे सकते हैं?

आपका पुत्र होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं और इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूँ। लेकिन इसके बावजूद मैं समझता हूँ कि आपको मेरे साथ सलाह-मशविरा किये बिना ऐसे आवेदन देने का कोई अधिकार नहीं था। आप जानते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे काफी अलग हैं। मैं आपकी सहमति या असहमति का ख्याल किये बिना सदा स्वतन्त्रता पूर्वक काम करता रहा हूँ।

मुझे यकीन है कि आपको यह बात याद होगी कि आप आरम्भ से ही मुझसे यह बात मनवा लेने की कोशिशें करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा संजीदगी से लड़ूँ और अपना बचाव ठीक से प्रस्तुत करूँ, लेकिन आपको यह भी मालूम है कि मैं सदा इसका विरोध करता रहा हूँ। मैंने कभी भी अपना बचाव करने की इच्छा प्रकट नहीं की और न ही मैंने कभी इस पर संजीदगी से गौर किया है।

आप जानते हैं कि हम एक निश्चित नीति के अनुसार मुकदमा लड़ रहे हैं. ... मेरा हर कदम इस नीति, मेरे सिद्धान्तों और हमारे कार्यक्रम के अनुरूप होना चाहिए। आज स्थितियाँ बिल्कुल अलग हैं। लेकिन अगर स्थितियाँ इससे कुछ और भी अलग होतीं तो भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता जो बचाव प्रस्तुत करता। इस पूरे मुकदमे में मेरे सामने एक ही विचार था और वह यह कि हमारे विरुद्ध जो संगीन आरोप लगाये गये हैं, बावजूद उनके हम पूर्णतया इस सम्बन्ध में अवहेलना का व्यवहार करें। मेरा नजरिया यह रहा है कि सभी राजनीतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी स्थितियों में उपेक्षा दिखानी चाहिए और उनको जो भी कठोरतम सजा दी जाये, वह उन्हें हँसते-हँसते बर्दाश्त करनी चाहिए। इस पूरे मुकदमे के दौरान हमारी योजना इसी सिद्धान्त के अनुरूप रही है। हम ऐसा करने में सफल हुए या नहीं, यह फैसला करना मेरा काम नहीं। हम खुदगर्जी को त्यागकर अपना काम कर रहे हैं।

वाइसराय ने लाहौर साजिश केस आर्डिनेंस जारी करते हुए इसके साथ जो वक्तव्य दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि इस साजिश के मुजरिम शान्ति-व्यवस्था को समाप्त करने के प्रयास कर रहे हैं। इससे जो हालात पैदा हुए उसने हमें यह मौका दिया कि हम जनता के समक्ष यह बात प्रस्तुत करें कि वह स्वयं देख ले कि शान्ति-व्यवस्था एवं कानून समाप्त करने की कोशिशें हम कर रहे हैं या हमारे विरोधी? इस बात पर मतभेद हो सकते हैं। शायद आप भी उनमें से एक हों जो इस बात पर मतभेद रखते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप मुझसे सलाह किये बिना मेरी ओर ऐसे कदम उठायें। मेरी ज़िन्दगी इतनी कीमती नहीं जितनी कि आप सोचते हैं। कम-से-कम मेरे लिए तो इस जीवन की इतनी कीमत नहीं कि इसे सिद्धान्तों को कुर्बान करके बचाया जाये। मेरे अलावा मेरे और साथी भी हैं जिनके मुकदमे इतने ही संगीन हैं जितना कि मेरा मुकदमा। हमने एक संयुक्त योजना अपनायी है और इस योजना पर हम अन्तिम समय तक डटे रहेंगे। हमें इस बात की कोई परवाह नहीं कि हमें व्यक्तिगत रूप में इस बात के लिए कितना मूल्य चुकाना पड़ेगा।

पिता जी, मैं बहुत दुख का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे भय है, आप पर दोषारोपण करते हुए या इससे बढ़कर आपके इस काम की निन्दा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की सीमाएँ न लाँघ जाऊँ और मेरे शब्द ज्यादा सख्त न हो जायें। लेकिन मैं स्पष्ट शब्दों में अपनी बात अवश्य कहूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति मुझसे ऐसा व्यवहार करता तो मैं इसे गद्दारी से कम न मानता, लेकिन आपके सन्दर्भ में मैं इतना ही कहूँगा कि यह एक कमजोरी है -- निचले स्तर की कमजोरी।

यह एक ऐसा समय था जब हम सबका इम्तिहान हो रहा था। मैं यह कहना

चाहता हूँ कि आप इस इम्तिहान में नाकाम रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आप भी इतने ही देशप्रेमी हैं, जितना कि कोई और व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आपने अपनी पूरी जिन्दगी भारत की आजादी के लिए लगा दी है, लेकिन इस अहम मोड़ पर आपने ऐसी कमजोरी दिखायी, यह बात मैं समझ नहीं सकता।

अन्त में मैं आपसे, आपके अन्य मित्रों एवं मेरे मुकदमे में दिलचस्पी लेनेवालों से यह कहना चाहता हूँ कि मैं आपके इस कदम को नापसन्द करता हूँ। मैं आज भी अदालत में अपना कोई बचाव प्रस्तुत करने के पक्ष में नहीं हूँ। अगर अदालत हमारे कुछ साथियों की ओर से स्पष्टीकरण आदि के लिए प्रस्तुत किये गये आवेदन को मंजूर कर लेती, तो भी मैं कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत न करता।

भूख हड़ताल के दिनों में ट्रिब्यूनल को जो आवेदन पत्र मैंने दिया था और उन दिनों में जो साक्षात्कार दिया था उन्हें गलत अर्थों में समझा गया है और अखबारों में यह प्रकाशित कर दिया गया कि मैं अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ, हालाँकि मैं हमेशा स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के विरोध में रहा। आज भी मेरी वही मान्यता है जो उस समय थी।

बोर्स्टल जेल में बन्दी मेरे साथी इस बात को मेरी ओर से गद्दारी और विश्वासघात ही समझ रहे होंगे। मुझे उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं मिल सकेगा।

मैं चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में जो उलझनें पैदा हो गयी हैं, उनके विषय में जनता को असलियत का पता चल जाये। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जल्द-से-जल्द यह चिट्ठी प्रकाशित कर दें।

आपका आज्ञाकरी,
भगतसिंह

''अगर जरूरत हो, तो उग्र बनो ऊपरी तौर पर
लेकिन हमेशा नरम रहो अपने दिल में
अगर जरूरत हो, तो फूँफकारो पर डँसो मत
दिल में प्यार को जिन्दा रखो और लड़ते रहो ऊपरी तौर पर''

-- एक कविता का अंश जिसे भगत सिंह ने अपने मित्र लाला रामसरन दास द्वारा लिखित काव्यकृति ''द ड्रीमलैण्ड'' की भूमिका में शामिल किया।

गाँधी जी के नाम खुली चिट्ठी

परम कृपालु महात्मा जी,

आजकल की ताजा खबरों से मालूम होता है कि समझौते की बातचीत की सफलता के बाद आपने क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं को फिलहाल अपना आन्दोलन बन्द कर देने और आपको अपने अहिंसावाद को आजमा देखने का आखिरी मौका देने के लिए कई प्रकट प्रार्थनाएँ की हैं। वस्तुत: किसी आन्दोलन को बन्द करना केवल आदर्श या भावना से होनेवाला काम नहीं है। भिन्न-भिन्न अवसरों की आवश्यकताओं का विचार ही अगुआओं को उनकी युद्धनीति बदलने के लिए विवश करता है।

माना कि सुलह की बातचीत के दरम्यान, आपने इस ओर एक क्षण के लिए भी न तो दुर्लक्ष्य किया, न इसे छिपा ही रखा कि यह समझौता अन्तिम समझौता न होगा। मैं मानता हूँ कि सब बुद्धिमान लोग बिल्कुल आसानी के साथ यह समझ गये होंगे कि आपके द्वारा प्राप्त तमाम सुधारों का अमल होने लगने पर भी कोई यह न मानेगा कि हम मंजिले-मकसूद पर पहुँच गये हैं। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता जब तक न मिले, तब तक बिना विराम के लड़ते रहने के लिए महासभा लाहौर के प्रस्ताव से बँधी हुई है। उस प्रस्ताव को देखते हुए मौजूदा सुलह और समझौता सिर्फ काम चलाऊ युद्ध-विराम है, जिसका अर्थ यही होता है कि आनेवाली लड़ाई के लिए अधिक बड़े पैमाने पर अधिक अच्छी सेना तैयार करने के लिए यह थोड़ा विश्राम है। इस विचार के साथ ही समझौते और युद्ध-विराम की शक्यता की कल्पना की जा सकती और उसका औचित्य सिद्ध हो सकता है।

किसी भी प्रकार का युद्ध-विराम करने का उचित अवसर और उसकी शर्तें ठहराने का काम तो उस आन्दोलन के अगुआओं का है। लाहौरवाले प्रस्ताव के रहते हुए भी आपने फिलहाल सक्रिय आन्दोलन बन्द रखना उचित समझा है, तो भी वह प्रस्ताव तो कायम ही है। इसी तरह 'हिन्दुस्तानी सोशियालिस्ट रिपब्लिकन पार्टी' के नाम से ही साफ पता चलता है कि क्रान्तिवादियों का आदर्श समाज-सत्तावादी प्रजातन्त्र की स्थापना करना है। यह प्रजातन्त्र मध्य का विश्राम नहीं है। उनका ध्येय प्राप्त न हो और आदर्श सिद्ध न हो, तब तक वे लड़ाई जारी रखने के लिए बँधे हुए हैं। परन्तु बदलती हुई परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार वे अपनी युद्ध-नीति बदलने

1. गाँधी जी के नाम सुखदेव की यह 'खुली चिट्ठी' मार्च, 1931 में लिखी गयी थी जो गाँधी जी के उत्तर सहित हिन्दी 'नवजीवन' 30 अप्रैल, 1931 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

को तैयार अवश्य होंगे। क्रान्तिकारी युद्ध जुदा-जुदा मौकों पर जुदा-जुदा रूप धारण करता है। कभी वह प्रकट होता है, कभी गुप्त, कभी केवल आन्दोलन-रूप होता है, और कभी जीवन-मरण का भयानक संग्राम बन जाता है। ऐसी दशा में क्रान्तिवादियों के सामने अपना आन्दोलन बन्द करने के लिए विशेष कारण होने चाहिए। परन्तु आपने ऐसा कोई निश्चित विचार प्रकट नहीं किया। निरी भावपूर्ण अपीलों का क्रान्तिवादी युद्ध में कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, हो नहीं सकता।

आपके समझौते के बाद आपने अपना आन्दोलन बन्द किया है, और फलस्वरूप आपके सब कैदी रिहा हुए हैं। पर क्रान्तिकारी कैदियों का क्या? 1915 ई. से जेलों में पड़े हुए गदर-पक्ष के बीसों कैदी सजा की मियाद पूरी हो जाने पर भी अब तक जेलों में सड़ रहे हैं। मार्शल लॉ के बीसों कैदी आज भी जिन्दा कब्रों में दफनाये पड़े हैं। यही हाल बब्बर अकाली कैदियों का है। देवगढ़, काकोरी, मछुआ-बाजार और लाहौर षड्यन्त्र के कैदी अब तक जेल की चहारदीवारी में बन्द पड़े हुए बहुतेरे कैदियों में से कुछ हैं। लाहौर, दिल्ली, चटगाँव, बम्बई, कलकत्ता और अन्य जगहों में कोई आधी दर्जन से ज्यादा षड्यन्त्र के मामले चल रहे हैं। बहुसंख्यक क्रान्तिवादी भागते फिरते हैं, और उनमें कई तो स्त्रियाँ हैं। सचमुच आधी दर्जन से अधिक कैदी फाँसी पर लटकने की राह देख रहे हैं। इन सबका क्या? लाहौर षड्यन्त्र केस के सज़ायाफ्ता तीन कैदी, जो सौभाग्य से मशहूर हो गये हैं और जिन्होंने जनता की बहुत अधिक सहानुभूति प्राप्त की है, वे कुछ क्रान्तिवादी दल का एक बड़ा हिस्सा नहीं हैं। उनका भविष्य ही उस दल के सामने एकमात्र प्रश्न नहीं है। सच पूछा जाये तो उनकी सजा घटाने की अपेक्षा उनके फाँसी पर चढ़ जाने से ही अधिक लाभ होने की आशा है।

यह सब होते हुए भी आप उन्हें अपना आन्दोलन बन्द करने की सलाह देते हैं । वे ऐसा क्यों करें? आपने कोई निश्चित वस्तु की ओर निर्देश नहीं किया है। ऐसी दशा में आपकी प्रार्थनाओं का यही मतलब होता है कि आप इस आन्दोलन को कुचल देने में नौकरशाही की मदद कर रहे हैं, और आपकी विनती का अर्थ उनके दल को द्रोह, पलायन और विश्वासघात का उपदेश करना है। यदि ऐसी बात नहीं है, तो आपके लिए उत्तम तो यह था कि आप कुछ अग्रगण्य क्रान्तिकारियों के पास जाकर उनसे सारे मामले के बारे में बातचीत कर लेते। अपना आन्दोलन बन्द करने के बारे में पहले आपको उनकी बुद्धि की प्रतीति करा लेने का प्रयत्न करना चाहिए था। मैं नहीं मानता कि आप भी इस प्रचलित पुरानी कल्पना में विश्वास रखते हैं कि क्रान्तिकारी बुद्धिहीन हैं, विनाश और संहार में आनन्द मानने वाले हैं। मैं आपको कहता हूँ कि वस्तुस्थिति ठीक इसकी उलटी है, वे सदैव कोई भी काम करने से पहले उसका खूब सूक्ष्म विचार कर लेते हैं, और इस प्रकार वे जो जिम्मेदारी अपने माथे लेते हैं, उसका उन्हें पूरा-पूरा ख्याल होता है। और,

क्रान्ति के कार्य में दूसरे किसी भी अंग की अपेक्षा वे रचनात्मक अंग को अत्यन्त महत्त्व का मानते हैं, हालाँकि मौजूदा हालत में अपने कार्यक्रम के संहारक अंग पर डटे रहने के सिवा और कोई चारा उनके लिए नहीं है।

उनके प्रति सरकार की मौजूदा नीति यह है कि लोगों की ओर से उन्हें अपने आन्दोलन के लिए जो सहानुभूति और सहायता मिली है, उससे वंचित करके उन्हें कुचल डाला जाये। अकेले पड़ जाने पर उनका शिकार आसानी से किया जा सकता है। ऐसी दशा में उनके दल में बुद्धि-भेद और शिथिलता पैदा करनेवाली कोई भी भावपूर्ण अपील एकदम बुद्धिमानी से रहित और क्रान्तिकारियों को कुचल डालने में सरकार की सीधी मदद करने वाली होगी।

इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि या तो आप कुछ क्रान्तिकारी नेताओं से बातचीत कीजिए -- उनमें से कई जेलों में हैं -- और उनके साथ सुलह कीजिए या ये सब प्रार्थनाएँ बन्द रखिए। कृपा कर हित की दृष्टि से इन दो में से कोई एक रास्ता चुन लीजिए और सच्चे दिल से उस पर चलिए। अगर आप उनकी मदद न कर सकें, तो मेहरबानी करके उन पर रहम करें। उन्हें अलग रहने दें। वे अपनी हिफाजत आप अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। वे जानते हैं कि भावी राजनीतिक युद्ध में सर्वोपरि स्थान क्रान्तिकारी पक्ष को ही मिलनेवाला है। लोकसमूह उनके आस-पास इकट्ठा हो रहे हैं, और वह दिन दूर नहीं है, जब ये जनसमूह को अपने झण्डे तले, समाजसत्ता प्रजातन्त्र के उम्दा और भव्य आदर्श की ओर ले जाते होंगे।

अथवा अगर आप सचमुच ही उनकी सहायता करना चाहते हों, तो उनका दृष्टिकोण समझ लेने के लिए उनके साथ बातचीत करके इस सवाल की पूरी तफसीलवार चर्चा कर लीजिए।

आशा है, आप कृपा करके उक्त प्रार्थना पर विचार करेंगे और अपने विचार सर्वसाधारण के सामने प्रकट करेंगे।

आपका,
अनेकों में से एक

उसे यह फिक्र है हरदम नया तर्ज़े-जफा क्या है,
हमें यह शौक है देखें सितम की इन्तहा क्या है।

-- भगत सिंह द्वारा अपने छोटे भाई
कुलतार सिंह के नाम लिखे अन्तिम पत्र से

हमें फाँसी देने के बजाय गोली से उड़ा दिया जाये

(फाँसी पर लटकाये जाने से 3 दिन पूर्व -- 20 मार्च, 1931 को -- सरदार भगत सिंह तथा उनके सहयोगियों श्री राजगुरू एवं श्री सुखदेव ने निम्नांकित पत्र के द्वारा सम्मिलित रूप से पंजाब के गवर्नर से माँग की थी कि उन्हें युद्धबन्दी माना जाये तथा फाँसी पर लटकाये जाने के बजाय गोली से उड़ा दिया जाये। यह पत्र इन राष्ट्रवीरों की प्रतिभा, राजनीतिक मेधा, साहस एवं शौर्य की अमरगाथा का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। -- सं.)

20 मार्च, 1931
प्रति, गवर्नर पंजाब, शिमला

महोदय,

उचित सम्मान के साथ हम नीचे लिखी बातें आपकी सेवा में रख रहे हैं --

भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वाइसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड्यन्त्र अभियोग की सुनवायी के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) स्थापित किया था, जिसने 7 अक्तूबर, 1930 को हमें फाँसी का दण्ड सुनाया। हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा आरोप यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है।

न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं --

पहली यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप में इस युद्ध में भाग लिया है, अत: हम युद्धबन्दी हैं।

यद्यपि इनकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है। पहली बात के सम्बन्ध में हम तनिक विस्तार से प्रकाश डालना चाहते हैं। हम नहीं समझते कि प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई है। हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है? परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और साथ ही इसे इसके ठीक सन्दर्भ में समझाना चाहते हैं।

युद्ध की स्थिति

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है--चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियों पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएँ मिल जायें, अथवा समझौते हो जायें, इससे भी स्थिति नहीं बदल सकती, तथा जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है। हमें इस बात की भी चिन्ता नहीं कि युवकों को एक बार फिर धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता पथ-भ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सबकुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने अपने पतियों को बलिवेदी पर भेंट किया, भाई भेंट किये, और जो कुछ भी उनके पास था -- सब न्यौछावर कर दिया। उन्होंने अपने आपको भी न्यौछावर कर दिया। परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेण्ट भले ही झूठी कहानियाँ बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की प्रसिद्धि को हानि पहुँचाने का प्रयास करें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

युद्ध के विभिन्न स्वरूप

हो सकता है कि यह लड़ाई भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। किसी समय यह लड़ाई प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलती रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर युद्ध जारी रहे और कभी यह घटना इतनी भयानक हो जाये कि जीवन और मृत्यु की बाजी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन लें, परन्तु यह लड़ाई जारी रहेगी। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण कर ले। पर निश्चय ही यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति समाप्त नहीं हो जाती और मानवी सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

अन्तिम युद्ध

निकट भविष्य में अन्तिम युद्ध लड़ा जायेगा और यह युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूँजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएँ इतिहास के उस अध्याय में लिखी जायेंगी जिसको यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान हैं। जहाँ तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम जोरदार शब्दों में आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फाँसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है। आप ऐसा करेंगे ही, आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप जिसकी लाठी उसकी भैंसवाला सिद्धान्त ही अपना रहे हैं -- और आप उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है। इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं, अत: इस आधार पर हम आपसे माँग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों-जैसा ही व्यवहार किया जाये और हमें फाँसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है जो आपकी सरकार के एक न्यायालय ने किया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना-विभाग को आदेश दे दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।

भवदीय,

भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।

-- भगत सिंह द्वारा अपने छोटे भाई
कुलतार सिंह के नाम लिखे अन्तिम पत्र से

वर्ग-रुचि का आन्दोलनों पर असर

(सतम्बर, 1928 के 'किरती' में 'एक निर्वासित' एम. ए. के नाम से एक बहुत ही दिलचस्प लेख प्रकाशित हुआ था। यह लेख लाला हरदयाल की रचना है। भगत सिंह और उनके साथियों ने इस पर गहराई से विचार किया था। -- सं.)

दुनिया-भर में दर्शनशास्त्रों तथा भ्रातृत्व के उपदेश की सारी उलझनों और मुसीबतों के होते हुए भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से सामने है। वह यह कि दुनिया इस समय अनेक वर्गों में बँटी हुई है। जो मनुष्य इस सच्चाई को नज़र अन्दाज करता है या जो ईश्वर के बन्दों की सच्ची सेवा करना चाहता है वह उस ज्योतिषी के समान है जो कि कोशिश के सिद्धान्त तथा सितारों की गर्दिश से अनजान है। खाली बेवकूफ और निकम्मा है। दुनिया के लोग, हालाँकि, अन्धे भी अच्छी तरह जानते हैं कि दुनिया में अमीर और गरीब दो वर्ग हैं। दुनिया-भर की भाषा-बोलियों में अपने-अपने अलग-अलग शब्द इस वर्ग-विभाजन को जताने के लिए मौजूद हैं। मालिक और नौकर, जमींदार और मजदूर, शासक और प्रजा, पूँजीपति और मेहनतकश आदि शब्द उस बुरे किस्से की याद दिलाते हैं, जिसने दुनिया से बंधुत्व को नष्ट कर दिया है।

इस समय दुनिया में अलग-अलग पार्टियाँ मौजूद हैं, लेकिन सरसरी निगाह से देखने पर हम दो प्रकार के वर्गों को तो स्पष्ट तौर पर देखते है। एक तो वह वर्ग जो शारीरिक श्रम करके कुछ अर्जित करता हैं दूसरे वह जो मेहनत नहीं करता। जो लोग खेतों, खदानों अथवा कारखानों आदि में काम करते हैं, वे मेहनतकश वर्ग में शामिल हैं। जो लोग इन जगहों पर या अन्यत्र भी मेहनत करने के लिए मजबूर नहीं किये जाते उनका वर्ग भिन्न है। दरअसल इस दुनिया में दो ही कौमें हैं -- ये ही दोनों वर्ग। इससे अधिक अगर कोई दूसरा विभाजन किया गया है तो वह बेहूदा और हानिकारक है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक मेहनतकश व्यक्ति की यह इच्छा रहती है कि उसका पुत्र उन्नति करे और उस मेहनतकश वर्ग में से निकलकर खुशहाल वर्ग में शामिल हो जाये। दुनिया में हर जगह और हर सूरत में बढ़ई, लोहार और किसान आदि मेहनतकश लोगों से राजा, वजीर, वकील, न्यायाधीश, प्रोफेसर, जमींदार, साहूकार, बैंकर आदि कहीं ज्यादा कमाते हैं। दुनिया की कोई शक्ति इन वर्गों को संयुक्त नहीं कर सकती। हिन्दुस्तानी 'सफेदपोश' शब्द उस गैर मेहनतकश वर्ग के लिए ही इस्तेमाल में लाया जाता है। यह तमाम चीजें जिनके कारण कि जिन्दगी रहने योग्य बन सकती है, अथवा आराम, शिक्षा,

हुनर, सफाई, आरोग्य आदि दौलत के साथ ही प्राप्त किये जाते हैं। बेचारे गरीब हर समय, हर जगह गन्दी जगहों पर ही बुरी ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए लाचार होते हैं। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए समय ही नहीं मिलता। गरीब मजदूर सारा-सारा दिन सिर्फ गुज़ारे के लिए पसीना-पसीना होकर काम करता रहता है, जबकि विद्वान और अमीर लोग बढ़िया-से-बढ़िया भोजन पाते हैं। घोड़ागाड़ियों और मोटरों पर चढ़कर सैर के लिए जाते हैं। खुशबूदार तेल और इत्र के साथ मालिश करते हैं। रेशमी कपड़े पहनते हैं। कहने का मतलब यह कि हर तरह ऐश की जिन्दगी गुजारते हैं।

प्रश्न उठता है कि यह अजीब हालत पैदा ही किस तरह हो गयी? क्या कारण है कि जो लोग खेती करते, कपड़े बुनते, कपड़े सिलते, नालियाँ साफ करते या आटा पीसते हैं, उनकी आमदनी उन लोगों से कई गुना कम है जो केवल लेक्चर देते हैं या मुकदमों पर बहस करते हैं, जो न्याय करते या हकूमत करते हैं, जो केवल दुआ करते या कुछ भी नहीं करते। क्या कभी-किसी ने सोचकर देखा है कि भगवान के हर बन्दे और समाज के लिए खेती-बाड़ी, कारीगरी, दस्तकारी आदि करनेवाले 'कानून' या 'सरकार', मज़हब या साहूकार या केवल जमींदार (वे लोग जो जमीनों के मालिक तो बने बैठे हैं लेकिन काम कुछ नहीं करते) से ज्यादा जरूरी हैं। फिर क्या कारण है कि उस आदमी को, जो कि कुछ घण्टे कुर्सी पर बैठकर कुछ आदमियों को जेल में भेज देता है, गेहूँ बोनेवाले किसान और जूते गाँठनेवाले मोची से कई गुना अधिक तनख्वाह दी जाती है? एक राजा या मजिस्ट्रेट या साहूकार ही मेहनतकश लोगों से कौन-सा अच्छा, लाभदायक और जरूरी काम करता है? अनेक लोग सारा दिन चोटी का जोर लगाकर काम करते हुए भी अपनी जरूरी चीजें प्राप्त नहीं कर सकते। क्या वजह है कि एक आदमी बैठा पंखा खींचता है और एक अन्दर पड़ा--भले ही वह हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो -- खर्राटें मारता है। इसे ही पंखा खींचने पर क्यों नहीं लगाया जाता वह लोग जो अनाज, दूध, मेवे, सब्जी पैदा नहीं करते, बल्कि इन चीजों को इस्तेमाल करते और खाते हैं, वास्तव में तो वही बेचारे किसान की मेहनत का लाभ उठाते हैं। इस बात को समझने के लिए किसी फिलासफी की जरूरत नहीं है। वे लोग जो रोटी पैदा नहीं करते और न रुई कातकर, बुनकर कपड़ा तैयार करते हैं, और फिर भी रोटी खाते और कपड़ा पहनते हैं, तब इसका केवल यही अर्थ है कि वे अपना हिस्सा गरीब मेहनतकशों की मेहनत में से ले लेते हैं जो कि रोटी पैदा करते हैं, कपड़े तैयार करते हैं। लेकिन जब हम देखते हैं कि खेती करनेवाले उस मेहनतकश किसान को इन मुफ्तखोर लोगों की तरह अच्छी खुराक भी नहीं मिलती, तो दिल में ख्याल आता है कि इस व्यवस्था में जरूर कहीं-न-कहीं धोखा है, गलती है, जुल्म है लेकिन यह मसला 'सर्व दर्शन संग्रह' आदि शास्त्रों की सोलह प्रकार की फिलासफी पढ़ने से हल नहीं हो सकता।

सेहत और जिन्दगी के सवाल को छोड़कर आज हम एक बहुत बड़ा सवाल पूछना चाहते हैं कि दुनिया में यह जो दो पर्टियाँ हैं -- एक ओर अमीर, विद्वान, सुस्त और हरामखोर; दूसरी तरफ गरीब, मेहनतकश, जाहिल अनपढ़ लोग जो कि दुनिया की दौलत पैदा करते हैं, तो यह दूसरा पक्ष किस तरह अस्तित्व में आया? दुनिया के तमाम आन्दोलन जो इस सच्चे सवाल को ओझल करते हैं, केवल बेहूदा, फिजूल और खतरनाक हैं -- फिर वह भले ही मजलिसी हों, भले ही मज़हबी हो या भाईचारे वाले, आर्थिक हों या राजनीतिक, राष्ट्रीय हों या अन्तरराष्ट्रीय।

अगर इन पार्टियों को मिला दिया जाये तो दुनिया में कोई ऐसी चीज, जिसको कि एक भगवान के बन्दे या कौम या मज़हब कहा जाता है, बाकी नहीं रह जाती, क्योंकि सदा ही कभी आँखों के सामने और कभी आँखों से ओझल, अमीर गरीबों के दुश्मन ही बने रहते हैं। क्योंकि वे अपनी दौलत इन गरीबों से ही छीनते हैं, उनको यह आसमानी तोहफे की तरह नहीं मिलती और न उनके पास (पारस) पत्थर है। राजा, वजीर और जज लोग सुख से जीवन गुजारते हैं, हालाँकि पैदावार में वह किसी प्रकार की मेहनत नहीं करते, क्योंकि बेचारा किसान सदा टैक्स देता रहता है। जमींदार खाली बैठकर ऐशो-आराम और बदमाशियाँ करता है, क्योंकि बेचारा गरीब खेत-मज़दूर लगान अदा करता रहता है। साहूकार या महाजन आराम से बैठा हुआ अमीर होता चला जाता है, क्योंकि ऋण का देनदार हमेशा ब्याज देता रहता है और एक सरमायेदार कारखाने के हिस्से खरीदकर घर बैठे ही मुनाफा प्राप्त करके मालोमाल हो सकता है, क्योंकि मजदूरों को मजदूरी कम दी जाती है। वकील सैकड़ों रुपये महीना कमा सकता है, हालाँकि वह एक आरामकुर्सी पर बैठा रहता है और कभी-कभी किसी अदालत में जाकर भाषण झाड़ आता है, क्योंकि वह अमीरों को जायदाद प्राप्त करने और गरीबों से लूटने में सहायता करता है। बात यह है कि जहाँ कहीं भी यह दिखायी दे कि कोई आदमी बिना हाथ-पैर हिलाये आराम की जिन्दगी भोग रहा है तो फौरन समझ लो कि यहाँ जरूर कोई-न-कोई धोखा है, फरेब है। उसके साफ अर्थ यह होते हैं कि अमीर तबका कभी भी यह नहीं चाहता कि गरीब लोग भी उन्नति कर लें, क्योंकि गरीबों की उन्नति और विद्या में बढ़ोतरी से तो, हरामखोरी फौरन पंख लगाकर उड़ जायेगी। जो कोई टैक्स न दे तो यह राजे-महाराजे, जज-वकील आदि किस तरह जीवित रह सकते हैं? अगर मजदूरों को लूटा न जाये तो कारखानों के मालिक और मैनेजर किस तरह करोड़पति बन सकते हैं? संस्कृत का कथन है कि 'खानेवाले और खाये जानेवाले में कभी दोस्ती नहीं हो सकती।' शेर-बकरी के इकट्ठे लौटने पर एक मसखरा शायर कहता है, 'लौटेंगे तो दोनों बेशक इकट्ठे ही, लेकिन उस समय बकरी शेर के पेट में होगी!'

अमीर वर्ग की हरामखोरी में देशभक्ति और मज़हब आदि भी कोई खास

रोल अदा नहीं कर सकते। क्या कभी कोई मुसलमान जमींदार अपने खेत-मजदूरों का लगान इसलिए माफ कर देता है कि वे मुसलमान हैं? क्यों जी, कभी कोई हिन्दू साहूकार अपने हिन्दू ऋणदाता से ब्याज लेना इसलिए छोड़ देता है कि वह हिन्दू है? क्या सिख राजे-महाराजे, वजीर, अमीर, अपनी सिख रियासतों के सिख किसानों और मजदूरों से टैक्स और लगान कम वसूल करते हैं? क्या इस लगान व टैक्स की वसूली के लिए वह कम जुल्म करते हैं? क्या अंग्रेज मालिक अपने अंग्रेज मजदूरों की तनख्वाहें तब बढ़ा देते हैं जब तक वे उनकी नाक में दम नहीं कर देते? क्या स्काटलैण्ड के जमींदारों ने अपने जंगल और मैदान गरीबों में बाँटकर उनको अमेरिका जाने से रोकने की कोशिश की है?

पिछले इतिहास से यदि कोई शिक्षा मिलती है तो वह यह कि अमीर वर्ग को दौलत ही सबसे अधिक प्यारी चीज है। उनको मज़हब ओर देशभक्ति से ज्यादा जायदाद और व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेम है। देशभक्ति और मज़हब अच्छी चीजें हैं लेकिन वह भी अमीर वर्ग को दौलत की चेटक से आजाद कराने में निष्फल साबित हुई हैं। दुनिया में आज तक ऐसा ही होता चला आया है और जब तक बड़े-छोटे अमीर तबके ही खत्म नहीं हो जाते तब तक ऐसा ही होता चला जायेगा।

महात्मा बुद्ध, महात्मा टाल्स्टाय और शहज़ादा क्रोपाटकिन-जैसे महापुरुष अपनी जायदाद छोड़कर गरीबों-जैसी जिन्दगी बसर करने लगे थे, लेकिन इन एक दो दृष्टान्तों से उसूल नहीं बदला जा सकता। यह हस्तियाँ तो सम्माननीय हैं, लेकिन बाकी अमीर वर्ग बेईमान और धोखेबाजी -- हर प्रकार से अपनी जायदाद की सुरक्षा करता है।

दूसरों के सिर पर मौज करनेवाली यह जमात जो भी काम करती है तो केवल अपने लाभ के लिए ही करती है। वह किसी भी तरह दूसरों का कुछ नहीं सँवार सकती, क्योंकि दुनिया में दोनों ही कौमें मौजूद हैं -- अमीर और गरीब। इनमें कोई प्यार और हमदर्दी नहीं है। वह तो एक-दूसरे के पक्ष के विचार समझने में भी असमर्थ हैं। साधारण लोग तो कम समझी की वजह से दूसरों के ख्याल और काम के बारे में नहीं समझ सकते और समझदार लोगों को जमाती बँटवारा दूसरों को समझने से वंचित रखता है। इससे हम देखते हैं कि जमाती बँटवारे के अलावा हालात भी अमीरों को गरीबों की असली हालत से परिचित नहीं होने देते। मनुष्य के विचार आमतौर पर उसके तजुर्बे पर निर्भर हुआ करते हैं और अमीर लोगों को गरीबों की हालत का कुछ भी तजुर्बा नहीं। इनका दायरा अपने ही तक सीमित सरगर्मियों में बहुत तंग होता है। उनको अपनी जमात से बाहर कुछ भी नजर नहीं आता। हर एक मनुष्य के उसूलों पर जमात का बहुत असर रहता है। अमीर लोग भले ही भगवान के हर बन्दे के लाभ के लिए क्यों न कोई आन्दोलन चलायें, आखिर में वह उनके अपने लिए ही लाभदायक साबित होते हैं। हर एक मनुष्य की बेहतरी और आम लोगों की

तरक्की के विचार की मौजूदगी के बावजूद अमीर लोग अपने वर्ग से बाहर नहीं देख सकते और तंग दायरे में ही चक्कर काटते रहते हैं। दुनिया में जितनी ताकत इस जमातवाद की वजह से नष्ट होती है उतनी और कहीं नहीं होती। लोग गरीबों की सहायता का ऊँचा आदर्श सामने रखकर मैदान में कूदते हैं, लेकिन बाद में अक्सर यही देखा जाता है कि उनकी सारी कोशिशें केवल अमीर जमात के फायदे के लिए ही इस्तेमाल हो रही हैं। इसी कारण खुशी रंज में बदल जाती है। लेकिन बहुत सारे भोले-भाले लोग आखिर तक यह समझ ही नहीं सकते और इस भ्रम में मरते हैं कि उन्होंने आम लोगों की तरक्की के लिए बहुत कुछ काम किया है।

आजकल हिन्दुस्तान के तमाम आन्दोलनों पर नज़रेसानी [पुनर्विचार] करके हर व्यक्ति इस हसरतनाक सच्चाई की एक बढ़िया मिसाल पा सकता है। चन्द सज्जनों की व्यक्तिगत कोशिशों को छोड़कर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जो लहरें उठीं वह अलग तरह के पढ़े-लिखे लोगों के आस-पास ही रहीं जो कि शहरों में रहते हैं और आज़ाद पेशावर लोग कहलाते हैं। मैं आज यह साबित करना चाहता हूँ कि पिछले तीस सालों से जो शैक्षणिक और राजनीतिक लहरें उठीं उनसे हिन्दुस्तान के आम लोगों ने बहुत कम लाभ उठाया, क्योंकि ऊँचे दर्जे के कहे जानेवाले लोग ही इन लहरों को उठाते थे। इसलिए इनके आदर्श भी इनके जमाती रंग में रँगे रहते हैं। हर एक लहर, इस लहर के उठानेवाले लोगों का असली निचोड़ ही हुआ करती है। निचले दर्जे के सुधारक लोग गरीब किसानों और मजदूरों के अन्दर घुसकर [इसे] अच्छी तरह समझ सकते हैं। वे अपनी जमात के दुख और तकलीफें ही समझ सकते हैं। उनका आदर्श ही उनके वर्गगत तंग दायरे में चला जाता है। वह इस काम को, जो कि इन दोनों जमातों को अलग-अलग करता है, लाँघ नहीं सकते। अगर किसानों ने कोई आन्दोलन न खड़ा किया हो तो उनका आदर्श अलग ही होता है। आम लोग अपनी वर्ग-रुचि के अनुसार ही हर एक चीज को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। वे लोग यह भी नहीं जान सकते कि वे इस राह पर किस तरह आ गये। फिर भले ही वे कितने ऊँचे आदर्श लेकर भगवान के बन्दों की सेवा और उनके भले के ख्याल से ही क्यों न आगे आयें, लेकिन वर्ग-रुचि उनका पीछा नहीं छोड़ती, क्योंकि वह बहुत जबर्दस्त ताकत है और उसने समाजी आन्दोलन में बड़ा भारी असर दिखाया है। इतिहास में अधिकतर चीजें जिस तरह नजर आती हैं, असल में उस तरह की नहीं होतीं। मजलिसी वर्ग-रुचि को समझनेवाला फिलासफर काम करनेवाले की अपेक्षा उसकी वर्ग-रुचि को अच्छी तरह समझ और समझा सकता है।

मैं यह लेख केवल इसलिए लिख रहा हूँ कि किसान और मजदूर ही हमारे प्यार के हकदार हैं। अंग्रेजी अदब से परिचित लोग कार्लाइल के प्रसिद्ध उसूल को कई बार

पढ़ चुके होंगे कि ''मैं केवल दो ही आदमियों की इज्जत और उनसे मुहब्बत करता हूँ, किसी तीसरे की नहीं।'' मैं एक कदम और आगे बढ़ता हूँ और कहता हूँ कि मैं केवल एक आदमी को ही प्यार और इज्जत की निगाह से देखता हूँ, किसी दूसरे को नहीं और वह है गरीब मजदूर (किरती), जो दुनिया की दौलत पैदा करता है।

पिछले तीस सालों से जो [आन्दोलनात्मक] लहरें हिन्दुस्तान में उठ रही हैं, उनको निम्नलिखित तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है --

1. राजनीतिक, 2. शैक्षिक, 3. धार्मिक।

अब मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि इन आन्दोलनों का फायदा उच्च वर्ग के लोगों को ही हुआ है। गरीबों को इससे कोई लाभ नहीं पहुँचा।

1. राजनीतिक लहरों ने अलग-अलग सूरतें पकड़ीं। इनमें समाजवादी और अतिवादी दोनों तरह के आदमी हैं। शान्तिमय रहकर सत्याग्रह करनेवाले लोग भी पैदा हो गये और भयानक समय लानेवाले खतरनाक इन्कलाबी लोग भी हो गये। इस शोर-शराबे में एक बात साफ है और वह यह कि इनके परिणामों से जनता को कोई भी लाभ नहीं हुआ। इण्डियन नेशनल कांग्रेस (हिन्दुस्तान-भर की कांग्रेस) मध्यम वर्ग के लोगों की एक खासी और अच्छी पार्टी (जमात) है। उसकी माँगें भी दरमियाने दर्जे के लोगों के लिए ही हैं। कांग्रेस कभी भी अपना कार्यक्रम मजदूरों और किसानों के साथ मिलकर तैयार नहीं कर सकी। क्योंकि इसमें ग्रेजुएट, वकील, प्रोफेसर, व्यापारी लोग ही शामिल हुए, इसलिए कांग्रेस का कार्यक्रम भी उनकी मर्जी के अनुसार ही बना। एक आन्दोलन एक समय में अमीर-गरीब दोनों वर्गों के लाभ के लिए काम नहीं कर सकता, यह दुनिया की कुछ बड़ी अनहोनी बातों में से एक है। कांग्रेस की माँग है कि इसे हिन्दुस्तान में खास हिस्सा मिलना चाहिए। यह हिस्सा किस तरह मिलेगा? जिन बातों की कांग्रेस की ओर से माँग की जा रही है वह किसके लिए पूरी होगी? अगर सरकारे-हिन्द की नौकरियाँ हिन्दुस्तानियों को मिलनी हैं तो उन्हें कौन लोग प्राप्त करेंगे? यह तो पक्का है कि मजदूर-किसान लोग उन नौकरियों को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। कुछेक हिन्दुस्तानियों को 'इण्डियन सिविल सर्विस' में ओहदे मिल जाने से ही किसानों और मजदूरों को शिक्षा, खुराक और रिहायश की तो बात ही क्या, जरूरी चीजें भी नसीब नहीं होंगी। गरीब किसानों को इस बात से क्या मतलब है कि उनकी कमाई का खासा बड़ा हिस्सा टैक्स आदि के रूप में लूट-पाटकर ले जानेवालों में से कितने हिन्दुस्तानी हैं और कितने दूसरे? माल-असबाब में से मुहम्मदुल्ला या स्वामी को भी हिस्सा मिलता है जो कि इसी देश के हैं। फिर कांग्रेस ने कभी यह भी माँग की है कि देशी सरकारी नौकरों की तनख्वाह घटा दी जाये और किसानों का टैक्स कम कर दिया जाये? कांग्रेस ने सरकारी अफसरों की तनख्वाह कम करवाकर गरीब किसानों का भार कम करने की कभी कोशिश की है? फिर आम जनता को इन आन्दोलनों और

माँगों से क्या मतलब?

असल में ऐसी [आन्दोलनकारी] लहरें तो मध्यम दर्जे के लोगों के दिमाग में से ही निकल सकती थीं, क्योंकि वह लोग अपने बच्चों के लिए अच्छी-से-अच्छी आसामी चाहते हैं। वकीलों की आँखें सदा जज की पदवी को तरसती रहती हैं, ग्रेजुएट लोग सूबों की सरकारों में अच्छी-अच्छी आसामियों को देख-देखकर ललचाते रहते हैं। क्योंकि यह मध्यम वर्ग के लोगों की माँगें हैं, इसलिए उन्होंने मध्यम वर्ग के लोगों को ही मुल्क और कौम समझना आरम्भ कर दिया है।

कांग्रेसवाले अक्सर चीखा करते हैं कि पंजाब कौंसिल और असेम्बली में हिन्दुस्तानियों की गिनती बढ़नी चाहिए। इससे भी आम हिन्दुस्तानियों को क्या लाभ हो सकता है? कौंसिलों के लिए कौन चुने जाते हैं? क्या वे लोग अपनी सेवाओं का इनाम नहीं लेते? क्या वे लोग इसमें अपनी इज्जत और फख्र नहीं समझते? क्या आनरेबल कहने से लोग किसी को 'शहीद' कहने लगते हैं? क्या सदस्यता के लिए चुने जाना सख्त मुसीबत की जिन्दगी गुजारना है या इससे बिल्कुल विपरीत? यह सवाल जरूर पूछे जाने चाहिए और जवाब भी मिलने चाहिए।

कौंसिल के असली फायदों का सवाल एक तरफ छोड़कर भी अगर देखें तो नजर आयेगा कि यह ख्याल केवल उस जमात के दिमाग में पैदा हो सकता है जिसे इससे कोई लाभ पहुँचने की आशा हो। कौंसिल के लिए कुछेक और वकील एवं साहूकर चुने जाने से करोड़ों मेहनतकश लोगों की जमात में क्या फर्क पड़ सकता है? क्या इन लोगों के टैक्स कम कर दिये जायेंगे? क्या उन लोगों के पुराने खतरे-बेगार, पुलिस या तहसीलदार, अकाल या प्लेग दूर हो जायेंगे? क्या उन लोगों के लिए गाँवों में साफ पानी पहुँचाने का बन्दोबस्त किया जायेगा? क्या गाँवों में स्कूल और लाइब्रेरी खोल दी जायेंगी। कुछ हिन्दुस्तानियों के कौंसिल में चले के साथ तो हम उपरोक्त बातों में कोई जमा-घटा नहीं देखते। हाँ, कुछेक तालीमवाले लोग इससे रुपया जरूर कमा सकेंगे और कुछ उनकी इज्जत भी बढ़ेगी और वह बड़े रोब के साथ इधर-उधर फिर सकेंगे और ये अंधेर ढानेवाले लोग कौम पर मुफ्त का रोबदाब डालकर गिरावट पैदा करेंगे। अभी सयाने सज्जन समझते हैं कि यह उन्नति की राह नहीं है, लेकिन वह बेचारे यह नहीं समझते कि यह लहरें कहाँ उठती हैं और किस तरह बढ़ती हैं? लेकिन सारा ताना-बाना समझ में आ सकता है, यदि वे इतना ही समझ लें कि यह सब कुछ मध्यम दर्जे के लोगों का ही निचोड़ है और किसानों और मजदूरों को इससे कोई लाभ नहीं।

इस तरह हम देखते हैं कि इन लहरों की कामयाबी से मध्यम दर्जे के लोगों को ही लाभ पहुँचता है। उन्होंने कभी बेगार, प्लेग आदि मर्जों के विरुद्ध बन्दोबस्त करने की कोशिश नहीं की। न कभी लगान, नमक-टैक्स, आबियाना कम करवाने या लोगों की शिक्षा का ठीक प्रबन्ध किया है, हालाँकि यही जरूरी सवाल हैं जिनके

हल हो जाने से जनता को लाभ हो सकता है। बेचारे मजदूर या किसान को सिविल सर्विस या पंजाब कौंसिल से क्या लाभ है? वह इज्जत नहीं चाहता, पदवी नहीं चाहता। हाँ, वह रोटी, आरोग्यता और आजादी जरूर चाहता है। लेकिन इस तरफ तो कांग्रेस ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। हाँ, कई सारे जरूरी प्रस्ताव पास कर दिये। लेकिन इनसे क्या हो सकता है? गवर्नमेण्ट अच्छी तरह समझती है कि इन मध्यम दर्जे के लोगों की वर्ग-रुचि क्या है? वह अच्छी तरह जानती है कि यह कुछ मामूली-सा सुधार चाहते हैं, जिसके साथ इनकी जमात को लाभ होने की आशा हों। इनको इससे कोई वास्ता नहीं कि गाँवों में रहनेवालों पर किस तरह की गुजरती है? इसी कारण गवर्नमेण्ट इन लोगों को कौंसिल और सिविल सर्विस आदि में कुछ पद देकर जनता के आन्दोलन रोकने के यत्न किया करती है। इस तरह बड़े-बड़े नेक दिल सच्चे सेवकों की मेहनतें भी मध्यम दर्जे के लोगों के लिए सोना साबित होती हैं, जब कि मजदूरों और किसानों को थोड़ा भी लाभ नहीं पहुँचता।

इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए मैं कहूँगा कि खेत-मजदूरों के हकों पर ध्यान दिया जाय। ऐसा करने पर मालूम पड़ जायेगा कि सारे राजनीतिक दल जमींदारों की ओर से जमींदारों के हक के लिए तो जरूर आन्दोलन करते हैं लेकिन खेत-मजदूरों के हकों के लिए आवाज उठाने की कभी हिम्मत नहीं करते, हालाँकि हमारे देश में बहुसंख्यक खेत-मजदूर जमींदारों के जुल्मों, टैक्सों और लगान के नीचे पीसे जा रहे हैं।

वह आन्दोलन जो अपने कार्यक्रम में इस बात को सबसे पहले सामने नहीं रखते और इसके लिए आन्दोलन नहीं करते, वह आम जनता के आन्दोलन नहीं कहला सकते। इसलिए हम कांग्रेस को गुनाहगार नहीं ठहरा सकते, क्योंकि वह अपने सदस्यों के अलावा दूसरे लोगों की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकती। जूती पहननेवाला ही अच्छी तरह समझ सकता है कि पैर में कील किस तरह चुभती है। यह बात किसान ही अच्छी तरह अनुभव कर सकता है कि लगान आदि से आये दिन दुखी होकर मेरी जिन्दगी किस तरह गुजर रही है। तालीमयाफ्ता मध्यम वर्ग के लोग खाक इसका अन्दाजा लगा सकेंगे।

शैक्षणिक लहरें

हम तो साफ कहते हैं कि किसानों की कांग्रेस के प्रस्ताव इस कांग्रेस से बिल्कुल अलग और नये ढंग के हैं और उनकी माँगें भी दूसरे ही ढंग की होंगी। राजनीतिक लहरों में देश ने बहुत-सी कुर्बानियाँ दीं। दर्जनों बहुमूल्य जानें इसमें लग गयीं। लेकिन शैक्षणिक लहरों के लिए तो हमारी बहुत सी ताकत खर्च हुई और बहुत-से नेक मर्द और औरतों की जिन्दगियाँ इनके लिए वक्फ हो गयीं। लेकिन

परिणाम यहाँ भी निराशा भरा हो गया है, क्योंकि इससे भी मध्यम वर्ग को ही कुछ लाभ पहुँच सका है। हमारे बहुत-से नेताओं ने शहरों में अलग-अलग कौमों, बिरादरियों और सभाओं की ओर से स्कूल-कालेज खोल दिये, लेकिन क्या हम पूछ सकते हैं कि उन देशभक्तों के दिलों में स्कूल-कालेज खोलने का ख्याल किस तरह पैदा हुआ? और क्यों उन्होंने अपने इस बड़े काम को गाँवों में नहीं किया, जिससे खर्च तो कम होता और लाभ अधिक पहुँचता। उन्होंने वकील और दफ्तरों के लिए क्लर्क पैदा करना ही अपना मन्तव्य क्यों बना लिया है और फिर हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग अपनी-अपनी यूनिवर्सिटियाँ क्यों कायम कर रहे हैं? हम तो यह समझते हैं कि यह लोग भी वर्ग-रुचि के साये के नीचे ही अपना काम करते हैं। दृष्टान्त पंजाब के आर्य समाज का ही ले लें।

वे (स्वामी दयानन्द की यादगार) एक ऐसे कालेज से क्या चाहते हैं जो कि पंजाब की सरकारी यूनिवर्सिटी के साथ मिलनेवाला हो? कितना अंधेर है। कहाँ स्वामी दयानन्द का आदर्श, कहाँ सरकारी यूनिवर्सिटी ओर इसके कालेज! लेकिन आखिर यह हुआ क्यों? इसकी वजह साफ है। इसके उपासकों में अधिकतर वकील और ग्रेजुएट आदि मध्यम वर्ग के लोग ही थे। यदि कहीं संस्कृत पढ़े पण्डितों के सामने स्वामी दयानन्द की यादगार स्थापित करने का सवाल आता तो वह बिल्कुल अलग चीज कायम करते। यदि उनके (स्वामी दयानन्द के) पुरातन उपासकों में किसानों की बहुसंख्या होती तो उन लोगों में ही कालेज कायम किया होता। इनके खयाल में किसी अन्य प्रकार की यादगार ही अच्छी और लाभदायक होती। समाज के शैक्षणिक अड्डे केवल इसीलिए कायम हुए कि मध्यम दर्जे के लोगों के बाल-बच्चे अच्छी तरह कमा सकें। यही वर्ग-रुचि काम कर रही है। दक्षिण के देशभक्तों ने शिक्षा के लिए बहुत कुर्बानियाँ कीं, लेकिन किनकी शिक्षा के लिए? फरगूसन कालेज ने मध्यम वर्ग के हजारों नौजवानों को शिक्षा दी। रोजी कमाने और उन्नति करने योग्य बनाया, लेकिन किसानों के लिए इसने क्या किया इस कालेज में से जितने वकील और प्रोफेसर निकलते हैं, वे बेचारे किसानों के सिरों पर यूँ ही खाली बैठे मौज मारते हैं। वे भी किसानों का लहू पीनेवाली जमात में शामिल हैं। आम लोग देशभक्तों की कुर्बानियों और योग्यता का कोई खास फायदा नहीं उठा सकते। क्या यह सही न होता कि ये लोग पुराने समय के साधुओं की तरह ही सीधे आम लोगों के पास चले गये होते और अपनी बहुमूल्य जिन्दगी मध्यम वर्ग को ही अर्पित करके न गँवा दी होती। यह इतना जरूरी सवाल है जो कभी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। मैं हर एक बन्दे की खिदमत करने को अपना आदर्श समझनेवाले नौजवानों से कहूँगा कि मध्यम वर्ग के लोगों के फायदों को अपनी राह

में न ठहरने दो। सीधे साधारण लोगों के पास जाओ। हम क्योंकि मध्यम वर्ग के लोगों में से हैं, इसलिए हो सकता है कुछ भूल करें और अपनी-अपनी जमात को कलंकित करें और दिल को तसल्ली देते रहें कि हम लोगों की सेवा कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि नौजवान इस खतरे से बचे रहें।

स्त्री-शिक्षा का शोर भी मध्यम वर्ग के लोगों का ही मसला है। हमारी कन्या-पाठशालाओं में किसानों की कितनी लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं? असल में गाँवों में तो यह सवाल ही नहीं है, क्योंकि वहाँ तो मर्द भी अनपढ़ हैं। यह सवाल तो तालीम-याफ्ता नौजवानों के लिए पढ़ी हुई लड़कियों की जरूरत से ही पैदा हुआ कि लड़कियों को भी शिक्षा दी जाय। इससे मध्यम वर्ग के लोगों के घर अधिक खुशहाल और आरामवाले बन गये। लेकिन कुछ एक महलों की मौजूदगी से आम लोगों की हालत किस तरह सुधर सकती है? उन लोगों के आराम और तरक्की से किसानों और मजदूरों को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। वह गरीब इन चीजों से कोई भी लाभ नहीं उठा सकते। यदि यह शैक्षणिक लहरें आम लोगों की बेहतरी के लिए जारी की गयी होतीं तो सबसे पहले गाँवों में स्कूल खोले जाते [क्योंकि] किसी भी मुल्क के आम लोगों में प्रारम्भिक शिक्षा के बिना जागृति नहीं आ सकती। हमें अपने देश की उन्नति के लिए सबसे पहले यही नींव डालनी पड़ेगी।

साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरें

इस समय हमारे देश में जो अलग-अलग साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरें शोर मचा रही थीं यह भी इन्हीं मध्यम वर्ग के लोगों के दिमाग की उपज है। उदाहरण के रूप में पर्दे के सवाल को ही ले लें। गरीब मजदूर औरतें तो सारा-सारा दिन सिरों पर टोकरियाँ उठाती हैं या खेतों में मेहनत-मजदूरी करके बड़ी मुश्किल से रोटी कमा सकती हैं। उनके आगे यह पर्दे का सवाल किस तरह पेश हो सकता है? मध्यम वर्ग के लोगों की आराम भरी जिन्दगी में ही यह सवाल उठ सकते हैं। मैं एक-एक कर ऐसी सभी साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरों में वर्ग-रूचि का असर देखता हूँ।

अन्त में इतना ही कहूँगा कि वह नौजवान जो दुनिया में कुछ काम करना चाहते हैं या जो लोग भगवान के हर बन्दे की सेवा करने के लिए अपनी कीमती जिन्दगियाँ वक्फ करना चाहते हैं, वे हिन्दुस्तानी मजदूरों और किसानों में मिलकर उनकी रुचि समझने की कोशिश करें और उनकी असली तकलीफें दूर करते हुए उनकी सच्ची उन्नति के लिए आन्दोलन करें। मैंने सरसरी निगाह से वर्तमान समय की गतिविधियों के कुछेक प्रमाण देकर एक खास रुचि की ओर इशारा किया है।

इसमें कुछेक नेकदिल लोगों को जोकि इन लहरों में शामिल हैं, नाराज नहीं होना चाहिए। मैं उनकी हमदर्दी और सच्चाई को अनुभव करते हुए भी इस गलती की ओर उनका ध्यान दिलाना अपना फर्ज़ समझता हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि यूरोपियन मुदबर का यह कथन सोलह आने सही है कि एक कारकुन का अपने काम से ही अनजान होना खतरनाक और हलाल कर देनेवाली बात है।

शहीदों के सपनों को साकार करने के लिए

''करोड़ों लोग आज अज्ञानता और गरीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मजदूरों और किसानों की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है -- विदेशी पूँजीवाद का एक तरफ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ से। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज बहुत से गठजोड़ कर रहा है।''

आज से सत्तर साल पहले भगत सिंह और उनके साथियों द्वारा संगठित 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' के घोषणा-पत्र में कही गयी उपरोक्त बातें हमारे देश की वर्तमान स्थिति पर भी अक्षरशः लागू होती हैं। आजादी के 50 वर्ष भी नहीं गुजरे थे कि हमारे देश की जनता पर साम्राज्यवादी-पूँजीवादी शक्तियों ने नयी आर्थिक गुलामी का शिकंजा कसना शुरू कर दिया। ऐसे में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के महान योद्धाओं -- शहीदे आजम भगत सिंह और उनके बलिदानी साथियों की स्मृतियाँ तथा उनके क्रान्तिकारी विचार हमारे युग के नौजवानों के लिए प्रेरणा-पुंज और मार्गदर्शक बनें, यह अत्यन्त स्वाभाविक है।

भगत सिंह ब्रिटिश-साम्राज्यवाद विरोधी मुक्ति-संघर्ष के उन समस्त वीर नायकों में अग्रगण्य रहे हैं जिन्होंने आजादी की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया और जिनकी याद भारतीय जन-गण के दिलों में आज भी जिन्दा है। आजादी के बाद हमारे देश के नये शासकों ने एक तरफ जहाँ अमर शहीदों के बलिदान को भुनाने की हर चन्द कोशिश की, वहीं उनके क्रान्तिकारी विचारों को भुला देने या उनके बारे में भ्रम फैलाने का भी सचेत प्रयास किया। यही कारण है कि देश की अधिकांश जनता भगत सिंह और उनके साथियों के विचारों से आज भी अनभिज्ञ है।

23 वर्ष की उम्र में फाँसी के फन्दे को चूम लेनेवाले शहीदे आजम भगत सिंह के विचार सदियों से भारतीय समाज में चली आ रही समस्याओं को समझने की अन्तर्दृष्टि तो प्रदान करते ही हैं, पूँजीवादी-साम्राज्यवादी षड्यन्त्रें और शोषण-उत्पीड़न के ताने-बाने को भी तार-तार करने में सहायक हैं। एक जज्बाती इन्कलाबी के रूप में अपनी राजनीतिक जिन्दगी शुरू करनेवाले भगत सिंह अपने शुरुआती अस्पष्ट विचारों को चन्द वर्षों में ही क्रमशः गहन, वैज्ञानिक और प्रखर विचारधारा में ढालते चले गये। उनके पत्रों, लेखों, दस्तावेजों और वक्तव्यों को काल-क्रमानुसार देखा जाय तो उनकी वैचारिक विकास-यात्रा को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

''जड़ता की स्थिति'' में ''क्रान्ति का स्पिरिट ताजा करने'' का जो आह्वान भगत सिंह ने किया था उसे अमली जामा पहनाने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि उनके विचारों की रोशनी को देश के छात्रों-नौजवानों तक ले जाया जाय जिनके संगठित प्रयास ''इनसानियत की रूह में हरकत पैदा करने'' में सहायक होंगे। भगत सिंह और उनके साथियों के पत्रों, लेखों, दस्तावेजों और वक्तव्यों का यह संकलन देश और समाज में छाये इस गहन अन्धकार में रास्ता तलाशने और उस पर चलने के लिए इच्छुक छात्रों-नौजवानों के हाथों में मशाल बने, यही हमारे इस छोटे से प्रयास की सार्थकता होगी।

-- गार्गी प्रकाशन